अगहन मास, कृष्ण पक्ष 20 वर्ष, अंक 318 पृष्ठ 8 मूल्य 1.00

अखंड भारत संदेश

प्रयागराज से प्रकाशित

www.akhandbharatsandesh.net

नगर संस्करण प्रयागराज शुक्रवार 03 दिसम्बर 2021 विश्व निर्माण एवं मानव विकास को दुतगति प्रदान करने हेतु क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान आश्रम की अनुपम भेंट

क्रियायोग संदेश
क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान संस्थान प्रयागराज

क्रिया योग: साँच (सच Truth) को आँच नहीं। आँच अज्ञानता (अविद्या Ignorance) समय, दूरी व सापेक्षता की अनुभूति है जो समस्त दुःखों का कारण है। अध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सामान्य तरीके से जीवन जीने पर सच की अनुभूति के लिए व्याधि रहित लगभग दस लाख वर्ष की आवश्यकता होती है, लेकिन क्रियायोग अभ्यास से सच की अनुभूति एक ही जन्म में सम्भव है।

1. प्राचीन उच्च मानव सभ्यता मे वर्णित यज्ञ, वर्तमान में विश्व विख्यात 'क्रियायोग' है।
2. क्रियायोग अभ्यास वेदपाठ है, पूर्ण ज्ञान की अनुभूति है।
3. क्रियायोग अभ्यास ईश्वर अनुभूति है।
4. क्रियायोग अभ्यास अतीत, वर्तमान व भविष्य से जुड़ना है।
5. क्रियायोग अभ्यास जीवन मृत्यु पर विजय है।

क्रियायोग से सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान सुनिश्चित।

10 मिनट का अभ्यास 20 वर्ष का विकास

देश में ओमीक्रोन की दस्तक, कर्नाटक में दो मामलों की पुष्टि

बेंगलुरु। स्वास्थ्य विभाग और बृहत बेंगलुरु महानगर पालिक (बीबीएमपी) के अधिकारी इस बात से अनजान हैं कि मरीज नंबर दो कोरोना वायरस के ओमिक्रॉन वैरिएंट से कैसे संक्रमित हुआ। कर्नाटक के स्वास्थ्य मंत्री डॉ के सुधाकर ने पुष्टि की है कि दक्षिण अफ्रीका से यात्रा करने वाले मरीज नंबर एक के विपरीत, मरीज नंबर दो एक स्थानीय निवासी है। उसका अंतरराष्ट्रीय यात्रा का कोई इतिहास नहीं है। बीबीएमपी द्वारा दिए गए घटनाक्रम के अनुसार, कर्नाटक में 66 वर्षीय दक्षिण अफ्रीकी के रूप में ओमिक्रॉन का पहला मामला दर्ज किया गया था, जो 20 नवंबर को बेंगलुरु पहुंचे थे। उसी दिन वह कोरोना पॉजिटिव पाया गया। उन्हें होम आइसोलेशन में रखा गया। बीबीएमपी की रिपोर्ट में कहा गया है कि उनके सीधे संपर्क में आए 24 और माध्यमिक संपर्कों में आए 240 लोगों में से कोई भी कोरोना पॉजिटिव नहीं पाया गया। बीबीएमपी कमिश्नर गौरव गुप्ता ने हिन्दुस्तान टाइम्स को बताया कि मरीज नंबर दो का दक्षिण अफ्रीकी नागरिक से कोई संपर्क नहीं था। मरीज नंबर दो की रिपोर्ट में कहा गया है कि वह बेंगलुरु के रहने वाले हैं। वह 44 साल के हैं। हेल्थ केयर वर्कर के तौर पर काम करते हैं। स्वास्थ्य मंत्री सुधाकर ने आगे पुष्टि की कि वह शहर के एक निजी अस्पताल में काम करने वाले डॉक्टर हैं। उन्हें 21 नवंबर को बुखार और शरीर में दर्द हुआ और अगले दिन उनका टेस्ट पॉजिटिव आया। चूंकि उनका सीटी मान कम था (जो एक उच्च वायरल लोड को इंगित करता है), उनका नमूना जीनोमिक सीक्वेंसिंग के लिए भेजा गया।

यह पूछे जाने पर कि विदेश यात्रा किए बिना या दक्षिण अफ्रीकी नागरिक के संपर्क में आए मरीज नंबर दो ओमिक्रॉन से कैसे संक्रमित हुआ, स्वास्थ्य मंत्री डी सुधाकर ने कहा, ₹रोगी किसी यात्रा इतिहास वाले व्यक्ति के संपर्क में आया होगा। हम अभी भी इसे ट्रैक कर रहे हैं।₹ बीबीएमपी आयुक्त गौरव गुप्ता ने इस मुद्दे पर टिप्पणी करने से इनकार कर दिया। सरकार ने यह भी पुष्टि की है कि मरीज 22 से 24 नवंबर के बीच होम आइसोलेशन में था और 25 नवंबर को उसे अस्पताल में एडमिट कर दिया गया था। हालांकि, उन्हें 27 नवंबर को छुट्टी दे दी गई। मरीज नंबर दो में 13 प्राथमिक संपर्क और 205 माध्यमिक संपर्क थे। जिनमें से तीन प्राथमिक संपर्कों और दो माध्यमिक संपर्कों ने कोविड के लिए सकारात्मक परीक्षण किया है। वे इस समय एक सरकारी अस्पताल में हैं और उनमें कोई गंभीर लक्षण नहीं दिख रहे हैं। नाम नहीं छापने की शर्त पर बात करने वाले स्वास्थ्य विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा कि विभाग या बीबीएमपी के पास वैरिएंट के स्रोत के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उन्होंने कहा, ॾहमारा मानना है कि इस सवाल का जवाब कॉन्टैक्ट ट्रेसिंग में मिल सकता है। वह सत्यापित करेगा कि क्या मरीज के किसी संपर्क ने विदेश यात्रा की है। हालांकि, बीबीएमपी (स्वास्थ्य) के विशेष आयुक्त के वी त्रिलोक चंद्रा ने एचटी को बताया कि मरीज नंबर दो के पांच संपर्कों का कोई यात्रा इतिहास नहीं है।

पलहालन में ग्रेनेड हमले में शामिल आंतकियों के मददगार को किया गिरफ्तार

श्रीनगर। सुरक्षा बलों ने जम्मू-कश्मीर के बारामुला जिले में आतंकवादी संगठन लश्कर-ए-तैयबा के एक आतंकी मॉड्यूल का भंडाफोड़ किया है। साथ ही पलहालन में हथगोला हमले में शामिल तीन आतंकी मददगारों को गिरफ्तार किया है। पुलिस के एक प्रवक्ता ने गुरुवार को यह जानकारी दी। उन्होंने बताया कि पुलिस ने सेना और एसएसबी के जवानों के साथ मिलकर बारामुला जिले के पट्टन इलाके के वुस्सान में एक संयुक्त वाहन जांच चौकी स्थापित की थी और इसी दौरान तीन संदिग्ध लोगों ने संयुक्त दल देखकर वहां से भागने की कोशिश की। प्रवक्ता ने बताया कि सुरक्षा बलों ने तीनों को पकड़ लिया। उनकी पहचान आसिफ अहमद रेसी, मेहराजुद्दीन डार और फैसल हबीब लोन के तौर पर की गयी है। ये सभी बांदीपुरा जिले के गुंड जहांगीर के रहने वाले हैं।

खुर्रम परवेज पर वठ के बयान पर भारत की फटकार, आरोपों को बताया निराधार

नई दिल्ली। खुर्रम परवेज की आतंकवाद के संबंध में हुई गिरफ्तारी को लेकर संयुक्त राष्ट्र के बयान पर भारत ने करारा जवाब दिया है। विदेश मंत्रालय के आधिकारिक प्रवक्ता अरिंदम बागची ने कहा है कि यूनाइटेड नेशंस हाई कमिशनर फॉर ह्यूमन राइट्स (डलढउलफ) का बयान भारत के कानून प्रवर्तन अधिकारियों और सुरक्षा बलों के खिलाफ निराधार आरोप है। बागची ने आगे कहा है कि इस बयान से पता चलता है कि भारत सीमा पार के आतंक से किस तरह से सामना कर रहा है और उससे हमारे लोगों के मौलिक अधिकार किस तरह प्रभावित हो रहे हैं, उसका उन्हें अंदाजा तक नहीं है।

नेशनल इन्वेस्टीगेशन एजेंसी द्वारा परवेज को गिरफ्तार करने के एक हफ्ते के बाद डलढउलफने खुर्रम परवेज के हिरासत में लिए जाने पर चिंता जताई थी और भारत सरकार से उनके अधिकारों की पूरी तरह से रक्षा करने की अपील की थी। डलढउलफ ने सिविल सोसाइटी एक्टर्स पर कार्रवाई, व्यापक आतंकवाद विरोधी उपायों के इस्तेमाल और नागरिकों के मौत पर भी चिंता जताई थी। डलढउलफ के प्रवक्ता रूपर्ट कोलविल ने कहा था कि हम भारतीय आतंकवाद विरोधी कानून, गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम (वअढअ) के तहत कश्मीरी मानवाधिकार कार्यकर्त्ता खुर्रम परवेज की गिरफ्तारी से बहुत चिंतित हैं। हम उनके व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उनके अधिकार की पूरी तरह से रक्षा करने और उन्हें रिहा करने के लिए एहतियाती कदम उठाने की अपील करते हैं।

ट्रैफिक नियम तोड़ने वालों पर सख्ती, नया मोटर व्हीकल एक्ट लागू होने के बाद कटे करीब आठ करोड़ चालान

नईदिल्ली। केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने गुरुवार को संसद को बताया कि मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम को लागू करने के बाद से यातायात नियमों का उल्लंघन करने के आरोप में अब तक करीब 8 करोड़ चालान काटे जा चुके हैं। सड़कों पर यातायात नियमों का पालन नहीं करना हादसों को दावत देता है। सड़कों पर होने वाली इन दुर्घटनाओं की वजह से बड़ी संख्या में लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। सड़क हादसों में मरने वाले लोगों में वो लोग भी शामिल होते हैं जिनकी कोई गलती नहीं होती, बल्कि वो तो नियमों का पालन कर रहे होते हैं। नियम तोड़ने वाले लोगों पर लगाम कसने और सड़क सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए थे। इनमें नया मोटर व्हीकल एक्ट भी शामिल है। केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने गुरुवार को संसद को बताया कि मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम को लागू करने के बाद से यातायात नियमों का उल्लंघन करने के आरोप में अब तक करीब 8 करोड़ चालान काटे जा चुके हैं। केंद्र सरकार ने एक सितंबर 2019 को नया मोटर व्हीकल एक्ट लागू किया था। तक से लेकर अब तक ट्रैफिक नियम तोड़ने वाले करोड़ों लोगों के खिलाफ कार्रवाई की गई है।

सड़क सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए और ट्रैफिक नियमों के सही ढंग से पालन करने के लिए 5 अगस्त 2019 को संसद में मोटर एक्ट (संशोधन) बिल पारित किया गया था। जिसके बाद राष्ट्रपति ने 9 अगस्त 2019 को इस बिल को मंजूरी दी थी। सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्री ने 2019-20 का आंकड़ा पेश करते हुए बताया कि जहां वर्ष 2019 में सड़क दुघर्टनाओं के 4,49,002 मामले सामने आए थे, वहीं वर्ष 2020 में मामलों की संख्या घटकर 3,66,138 हो गई। जो बेहतर संकेत है। नए संशोधित अधिनियम के लागू होने के बाद से चालान की संख्या में भारी इजाफा हुआ है। गडकरी ने संसद को बताया कि मंत्रालय ने शिक्षा, इंजीनियरिंग (सड़क और वाहन दोनों), प्रवर्तन और आपातकालीन देखभाल के आधार पर सड़क सुरक्षा के मुद्दे को हल करने के लिए एक कई तरीके अपनाएं हैं। देश में सड़क दुर्घटनाओं को रोकने के लिए हर संभव कोशिशें की जा रही हैं। नए नियमों के जरिए सड़क हादसों पर नियंत्रण करने का प्रयास जारी है। कुछ आंकड़ों की तुलना करें तो दो सालों में चालानी कार्रवाई में बड़ा अतंर आया है। नया कानून लागू होने के बाद 7,67,81,726 के चालान काटे गए हैं। वहीं इसी अवधि में इससे पूर्व 1,96, 58, 897 ट्रैफिक चालान किए गए थे। मोटर व्हीकल (संशोधन) एक्ट 2019 पास होने के बाद इस पर खूब हंगामा हुआ था।

बढ़ते वायु प्रदूषण को देखते हुए दिल्ली में पुनः बंद किए गये स्कूल

नई दिल्ली। दिल्ली सरकार की ओर से वायु प्रदूषण को कम करने के लिए चलाए जा रहे सभी अभियान विफल साबित हो रहे हैं। राज्य में वायु गुणवत्ता बेहद खराब स्थिति में बनी हुई है। इस बढ़ते वायु प्रदूषण को देखते हुए दिल्ली के सभी स्कूल गुरुवार से अगले आदेश तक के लिए बंद कर दिए गए हैं। दिल्ली के पर्यावरण मंत्री गोपाल राय ने गुरुवार को एक बयान जारी कर कहा कि बढ़ते वायु प्रदूषण को देखते हुए राजधानी के सभी स्कूल अगले आदेश तक बंद किए जा रहा हैं। मंत्री ने कहा कि वायु प्रदूषण की स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा है। इसलिए बच्चों की सेहत को ध्यान में रखते हुए सरकार ने यह फैसला लिया है।उल्लेखनीय है कि दिल्ली सरकार दीपावली के बाद से ही दावा कर रही है कि वह वायु प्रदूषण को कम करने के लिए अनेक प्रभावी कदम उठाए जा रहे हैं।

चीन के साथ गतिरोध पर बोले जयशंकर

दोनों देशों के संबंधों में जो स्थिति होगी वही सीमा पर हालात को भी दर्शाएगी

नई दिल्ली। चीन के साथ संबंधों के सवाल को लेकर विदेश मंत्री एस जयशंकर ने गुरुवार को कहा कि दोनों देशों के संबंधों में जो स्थिति होगी वही सीमा पर हालात में भी दिखाई देगी। उन्होंने कहा कि सीमा पर संघर्ष के साथ अन्य क्षेत्रों में बेहतर संबंधों की उम्मीद नहीं की जा सकती। पूर्वी लद्दाख में लंबे समय से चले आ रहे गतिरोध को लेकर विदेश मंत्री डॉ. एस जयशंकर ने गुरुवार को कहा कि भारत और चीन के बीर संबंधों की स्थिति सीमा की स्थिति को दर्शाएगी। उन्होंने आगे कहा कि अगर सीमा पर स्थिति तनावपूर्ण है तो संबंधों को आगे जारी रखने की कोई वास्तविक उम्मीद नहीं है। उन्होंने कहा कि ऐसा क्यों हुआ और यह क्या दशार्ता है, ऐसे सवाल

पूरी तरह से वैध हैं। जयशंकर ने एक कार्यक्रम में कहा, 'जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं, संबंधों की स्थिति सीमा पर स्थिति में दिखाई देगी। ऐसा नहीं हो सकता कि सीमा पर संघर्ष चलता रहे, तनाव बना रहे और अन्य पक्षों में हमारे संबंध उसी तरह चलते रहें। यह इस तरह काम नहीं करता है।' उन्होंने कहा कि जिस दिशा में हम बढ़ रहे हैं मैं नहीं समझता कि यह दोनों में से किसी भी देश के लिए बेहतर है।विदेश मंत्री ने चीन की ओर से सीमा पर सैनिकों की तैनाती बढ़ाने का आरोप लगाते हुए कहा कि पड़ोसी देश ने अपनी प्रतिबद्धताओं का उल्लंघन किया है। वहीं, अफगानिस्तान में हालात को लेकर जयशंकर ने कहा कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) प्रस्ताव 2593 कई मुद्दों पर दुनिया में व्यापक चिंता की अभिव्यक्ति है। अफगानिस्तान को आतंकवादियों की पनाहगाह नहीं बनने देना चाहिए। चीन के साथ सीमा वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर चल रहे गतिरोध को हल करने के लिए भारत और चीन दिसंबर के दूसरे हिस्से में 14वें दौर की कोर कमांडर वार्ता आयोजित कर सकते हैं। बातचीत के लिए आमंत्रण चीनी पक्ष की तरफ से आना है। समाचार एजेंसी की एक रिपोर्ट के अनुसार सरकारी सूत्रों ने बताया कि संभावना है कि वार्ता दिसंबर के दूसरे भाग यानी 15 तारीख के बाद ही होगी।

सपा के शासनकाल में जातिवाद व गुंडई रही हावी : प्रियंका वाड्रा

मुरादाबाद। कांग्रेस की राष्ट्रीय महासचिव व उत्तर प्रदेश कांग्रेस की प्रभारी प्रियंका वाड्रा ने गुरुवार को मुरादाबाद में प्रतिज्ञा रैली के

दौरान सपा व बसपा पर निशाना साधा। प्रियंका ने कहा कि उत्तर प्रदेश की मुख्य विपक्षी पार्टी भी समाजवादी पार्टी भी विकास का एजेंडा सेट नहीं कर पा रही है। उन्होंने कहा कि सपा बसपा ने भी जाति व धर्म की राजनीति को बढ़ाने का काम किया। सपा की सरकार में जातिवाद व गुंडई हुई, वहीं बसपा सरकार में लूट हुई है। कांग्रेस नेता ने कहा कि भाजपा ने किसानों का अपमान किया। किसानों को देशद्रोही, आन्दोलनजीवी क्या–क्या नहीं कहा। अब कह रहे हैं मुझे माफ करिए। जनता को कोरोनाकाल में हुई लापरवाही हुई का हिसाब मांगना चाहिए।प्रियंका गांधी ने कहा कि तीन काले कानूनों के अलावा किसानों के सामने और भी समस्याएं हैं। गन्ना किसानों का चार हजार करोड़ का अभी बकाया है। एमएसपी से कम दाम में किसानों का धान खरीदा जा रहा है। कांग्रेस सरकार बनने पर 2500 में गेहूं और धान और 400 रुपये में गन्ना खरीदा जाएगा और किसानों का पूरा कर्ज माफ किया जाएगा। 10 लाख तक का इलाज सरकार मुफ्त में कराएगी। विधवा व वृद्धा पेंशन 01 हजार की जाएगी। कर्ज माफ व बिजली हाफ होगी।उन्होंने कहा कि महंगाई की मार किसानों पर है। बिजली महंगी हो गई है। आटा,मोबाइल का डाटा,सरसों का तेल,डीजल पेट्रोल सब महंगा हो गया है। प्रियंका ने कहा कि हम महिलाओं को सशक्त बनाना चाहते हैं।

अखिलेश सरकार ने रोक दी थी एससी–एसटी छात्रों की स्कॉलरशिप : योगी

लखनऊ। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने पिछली सपा सरकार पर हमला बोला है। उन्होंने कहा कि पिछली सरकारें बच्चों के साथ भेदभाव करती थीं। उत्तर प्रदेश में पिछली सरकार ने अनुसूचित जाति-जनजाति के विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति रोक रखी थी। मुख्यमंत्री योगी ने कहा कि मार्च 2017 में जब हम लोग आए तो देखकर आश्यचर्यचकित हो गये कि उन बच्चों की स्कॉलरशिप गयी ही नहीं थी। फिर सरकार ने पहल करके उन बच्चों की स्कॉलरशिप भेजने का काम किया था। यह उन बच्चों के साथ अन्याय था। हमारी सरकार आने के बाद उन्हें यह सुविधा प्रदान की गयी।

मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने गुरुवार को यह बातें मेधावी छात्र-छात्राओं को स्कॉलरशिप की 458.66 करोड़ की धनराशि ऑनलाइन भेजने के अवसर पर कही। उन्होंने कहा कि जो सरकारें राजनीतिक प्रतिशोध और प्रतिद्वंदिता के तहत बच्चों के जीवन के साथ खिलवाड़ करती हों, उन लोगों के द्वारा यह सीधे-सीधे शासन की लोक कल्याणकारी योजनाओं को बाधित करने का एक षडयंत्र किया गया। मुख्यमंत्री ने कहा कि पिछले पांच वर्ष के दौरान आप लोगों ने देखा होगा कि शासन की योजनाओं को हर पात्र व्यक्ति तक पहुंचाने का कार्य हो रहा है। चाहे वह अनुसूचित जाति जनजाति के बच्चों के लिए निशुल्क कोचिंग की व्यवस्था हो, अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों के लिए कोचिंग की व्यवस्था हो या अन्य सभी बच्चों के लिए योजनाएं हों, समय से पारदर्शी तरीके से पहुंचाई गयी हैं। अभ्युदय योजना के तहत बच्चों को निःशुल्क कोचिंग की सुविधा दी जा रही है। उन्होंने समाज कल्याण विभाग को निर्देशित किया कि जल्द ही अभ्युदय योजना को समाज कल्याण विभाग सभी जिलों में लागू करे। अभ्युदय योजना अभी तक 18 जिलों में ही संचालित है। मुख्यमंत्री ने कहा कि हम तकनीक का उपयोग करें। ज्यादा से ज्यादा युवाओं को जोड़ें। उस फील्ड से जुड़े विशेषज्ञों को रखने की जरूरत है।मुख्यमंत्री योगी ने कहा कि आज 12 लाख 17 हजार 631 बच्चों को स्कॉलरशिप दी जा रही है। 458 करोड़ 66 लाख रुपये शुल्क प्रतिपूर्ति के रूप में उपलब्ध कराई गयी है। उन सभी युवा साथियों को बधाई। गत दो अक्टूबर को प्रदेश सरकार ने लगभग 57 लाख बच्चों को स्कॉलरशिप की किस्त भेजी थी। कोरोना महामारी के कारण बड़ी संख्या में हमारे स्कूल कॉलेज शुरू नहीं हो पाए थे।

बिहार में जातीय जनगणना तय

मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से मुलाकात के बाद तेजस्वी यादव का दावा

पटना। बिहार में अलग से जातीय जनगणना कराने को लेकर विपक्ष का प्रतिनिधिमंडल गुरुवार को मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से विधानसभा के उनके कक्ष में मिला। विपक्ष के नेता तेजस्वी यादव के नेतृत्व में सभी दलों के नेताओं ने जातीय जनगणना कराने के लिए जल्द सर्वदलीय बैठक बुलाने का आग्रह मुख्यमंत्री से किया।

मुलाकात के बाद पत्रकारों को तेजस्वी यादव ने बताया कि बैठक में निर्णय लिया गया है कि दो-चार दिनों के अंदर सर्वदलीय बैठक होगी। सीएम से मुलाकात के बाद तेजस्वी यादव ने कहा कि जातीय जनगणना तय है। यह कैसे होगी इस पर फैसला सर्वदलीय बैठक में होगी। केंद्र ने हमारी माँग को खारिज कर दिया है। ऐसे में बिहार सरकार द्वारा अपने खर्च पर जातीय गणना कराने की हमारी मांग पर मुख्यमंत्री ने भरोसा दिया है। इस विषय में शीघ्र ही सर्वदलीय बैठक बुलाई जाएगी। लालू प्रसाद के नेतृत्व में जातीय जनगणना को लेकर काफी पहले से संघर्ष किया जा रहा है, जिसमें विपक्ष की सभी पार्टियों ने भी सहयोग किया है। जातीय जनगणना को लेकर जो वादे नीतीश सरकार ने किए थे उसके मद्देनजर आज सभी विपक्षी दल मुख्यमंत्री से मुलाकात करने पहुंचे थे। जातीय जनगणना होने वाली है ये कैसे होगी और इसका क्या स्वरूप होगा ये सर्वदलीय बैठक के बाद तय किया जाएगाः फखऊ नेता तेजस्वी यादव तेजस्वी ने कहा कि नीति आयोग की रिपोर्ट भी बताती है कि बिहार में सबसे अधिक करीब 52 आबादी गरीब है। जातीय जनगणना से यह भी जानकारी मिलेगी कि कौन सी आबादी अधिक पीछे है, जिन्हें आगे लाने के लिए अलग से योजनाएं बनेंगी। कई मामलों में जातीय जनगणना उपयोगी होगी। यह बात गलत है कि जातीय जनगणना से कोई मतभेद पैदा होगा।

खबर संक्षेप

पंचायत भवन मछुआ की पानी की टंकी हैंडपंप केबिल चोर खोल ले गए

करछना। विकासखंड के अंतर्गत ग्राम पंचायत मछुआ में बीती रात सरकारी नव निर्मत बन रहे पंचायत भवन में लगाई गई पानी की नौटंकी व हैंडपंप बिजली के तार व टाइल्स आदि कई उपकरण चोर बुधवार की रात उठा ले गए सुबह जानकारी होने पर ग्राम प्रधान बनवारी लाल पटेल मौके पर जाकर देखा उपरोक्त सामान चोर उठा ले गए थे जिसकी सूचना संबंधित पुलिस स्टेशन थाना करछना में अज्ञात चोरों के खिलाफ तहरीर दी है जिस पर पुलिस मामले में छानबीन कर चोरों का पता लगाने में जुटी हुई है।

उपमुख्यमंत्री ने लोक सेवा आयोग परिसर में आवासों के नव निर्माण कार्यों का किया शिलान्यास

कार्यदायी संस्था को निर्धारित समयावधि में गुणवत्ता के साथ कार्य करें पूरा

अखंड भारत संदेश

प्रयागराज। उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य गुरूवार को लोक सेवा आयोग परिसर में आवासों के नव निर्माण कार्यों का शिलान्यास किया। उपमुख्यमंत्री जी ने कार्यदायी संस्था को निर्धारित समयावधि में गुणवत्ता के साथ कार्य को पूरा कराये जाने के निर्देश दिये है। उन्होंने कहा कि कार्य के लिए बजट की कोई कमी नहीं होने दी जायेगी। उन्होंने अवमुक्त बजट के सापेक्ष कार्य को जल्द से जल्द शुरू कराये जाने के निर्देश दिये है। इस अवसर पर उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा कि शासन की अपेक्षा के अनुरूप लोकसेवा आयोग ने निष्पक्ष, पारदर्शी एवं समयबद्ध तरीके से भतीर्यां कर अपनी स्वच्छ छवि बनायी है, इसके लिए सभी सम्बंधित लोग बधाई के पात्र है। आयोग के द्वारा कैलेंडर के अनुसार निर्धारित समय में भर्ती परीक्षाओं का आयोजन किया जा रहा है।

शिलान्यास के दौरान उपस्थित उपमुख्यमंत्री व लोग

विवाहिता पुत्री को आश्रित कोटे में नियुक्ति पर विचार का निर्देश

प्रयागराज। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने चीफ इंजीनियर लेवल-1 पारीछा थर्मल पावर प्रोजेक्ट झांसी को याची की मृतक आश्रित कोटे में नियुक्ति पर तीन माह में निर्णय लेने का निर्देश दिया है। यह आदेश न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव ने गुंजन आर्या की याचिका पर दिया है। याची का कहना था कि उसके पिता जगदीश सिंह थर्मल पावर प्रोजेक्ट में सहायक एकाउंटेंट थे, जिनकी 5 दिसंबर 20 को मृत्यु हो गई। याची ने आश्रित कोटे में नियुक्ति की अर्जी दी। चीफ इंजीनियर ने यह कहते हुए याचिका खारिज कर दी कि याची शादीशुदा है। परिवार में शामिल नहीं है, जिसे चुनौती दी गई। याची का कहना था कि विमला श्रीवास्तव केस में कोर्ट ने कहा है कि विवाहिता पुत्री भी विवाहित पुत्र की तरह मृतक आश्रित कानून के दायरे में आती है। कोर्ट ने चीफ इंजीनियर के आदेश को रद्द कर दिया है तथा नए सिरे से आदेश पारित करने का निर्देश दिया है।

न्यूज झरोखा

बाल क्रीड़ा प्रतियोगिता के मेधावियों को एसडीएम ने किया पुरस्कृत

बाल क्रीड़ा प्रतियोगिता में प्रतिभागी छात्रों को संबोधित करती एसडीएम बारा

घूरपुर। पढ़ाई के साथ बच्चों को खेल में भी प्रतिभाग करना चाहिए ।पढ़ाई से जहां बौद्धिक विकास होता है वहीं खेल से शारीरिक एवं मानसिक विकास भी होता है ।उक्त बातें गुरुवार के दिन घूरपुर स्थित बीआरसी जसरा के प्रांगण में ब्लॉक स्तरीय बाल क्रीड़ा प्रतियोगिता में शामिल होने वाले प्रतिभागियों के बीच उद्घाटन करते व मेधावियों को पुरस्कृत करते हुए एसडीएम बारा सौम्या गुरुरानी ने कही । बाल क्रीड़ा प्रतियोगिता व सांस्कृतिक कार्यक्रम में सौ मीटर की दौड़ में चितौरी के निर्भय पाल प्रथम स्थान पर रहे तो वहीं दो सौ मीटर की दौड़ में बीकर को आंचल अव्वल रही। चार सौ मीटर की दौड़ में कांटी की रागिनी ने कब्जा किया ।इसी तरह घूरपुर के अमित सौ मीटर की दौड़ में प्रथम स्थान पर रहे ।ग्यारह सौ मीटर की दौड़ में सुजौना की नैंसी पहले स्थान पर रहीं ।खूज़ी के विनय कुमार भारती छः सौ मीटर की दौड़ में आगे रहे ।कबड्डी में सुजौना के छात्र प्रथम व घूरपुर के छात्र दूसरे स्थान पर रहे ।सुलेख में रेही के सत्यम यादव व नैंशी कुशवाहा प्रथम स्थान पर रहे ।योग प्राणायाम में रेरा प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालय ने कब्जा जमाया ।रंगोली में भीटा उच्च प्राथमिक विद्यालय के छात्रों ने प्रथम स्थान पाया तो दूसरे नम्बर पर मनकवार गांव के छात्र दूसरे स्थान पर रहे ।इसी तरह खो खो में कांटी के छात्र प्रथम स्थान पर रहे । इस मौके पर बीडीओ जसरा हरिओम गुप्त,बीईओ जसरा अखिलेश वर्मा ,रेखा रानी,उपेंद्र द्विवेदी,डॉ एसपी सिंह,सरोज पटेल,देवव्रत द्विवेदी,अब्दुल कुद्दुस खान,शिवभूषण सिंह, शंकरचन्द्र द्विवेदी,जितेंद्र मिश्र,जीसी सिंह,अनिल भारद्वाज,होरी लाल ,ललित वर्मा ,राजेश्वर मिश्र आदि लोग मौजूद रहे । कार्यक्रम में आये सभी अतिथियो का बीईओ अखिलेश वर्मा ने आभार प्रकट किया।

बसपा पदाधिकारीयों की मासिक बैठक बृजकुंज मे संपन्न

बसपा पदाधिकारी की मासिक बैठक

जंघई। बसपा पदाधिकारियों की मासिक बैठक प्रतापपुर विधानसभा क्षेत्र के बृजकुंज उत्सव गृह जंघई में किया गया ।जिसमें मुख्य रूप से प्रतापपुर बसपा प्रत्याशी ई0घनश्याम पाण्डेय, जिलाध्यक्ष अभिषेक गौतम, अशोक बिंद कॉर्डिनेटर भाईचारा, अखिलेश गौतम विधानसभा अध्यक्ष, राकेश गौतम, राजेन्द्र दिवाकर, रामसजीवन पासी, राजपति पासीं व समस्त जोन,सेक्टर,बूथ अध्यक्ष उपस्थित रहे।

गाड़ी खड़ी करने को लेकर दो पक्षों में मारपीट, पुलिस को दी तहरीर

अखंड भारत संदेश

पीड़ित व उसके भाई रतन पाल व उसकी मां और भाभी उर्मिला को लाठी डंडों से मारा पीटा जिससे पीड़ित के दाहिने हाथ में गंभीर चोट आने से हाथ फैक्चर हो गया

मेजा रोड। मेजा के बंधवा गांव मे गाड़ी खड़ी करने को लेकर दो पक्षों मे कहासुनी के दौरान मारपीट हो गई। जिसमें एक पक्ष के दो तीन लोगों को चोटें आई हैं। पीड़ित ने मेजा पुलिस को तहरीर देकर कार्रवाई की मांग की है। मिली जानकारी के अनुसार मेजा थाना क्षेत्र के बंधवा गांव निवासी राजकुमार पाल पुत्र हरीशचंद्र पाल ने पुलिस को तहरीर देकर बताया कि 28 नवंबर की दोपहर वह अपनी पिकअप गाड़ी घर के सामने खड़ी किए थे। पड़ोस के ही रामजी पाल पुत्र पचईराम पाल, संतोष पाल, लालबाबू पाल व रणजीत पाल पुत्रगण रामजी पाल के घर से बात गई थी। दुसरे दिन जैसे ही वह घर वापस आए और गाड़ी खड़ी करने के विवाद को लेकर कहासुनी कर लिए। पीड़ित का आरोप है कि कहासुनी के दौरान वे लोग अपने हाथ में लाठी डंडा लिए मां बहन की भद्दी भद्दी गालियां देते हुए पीड़ित व उसके भाई रतन पाल व उसकी मां और भाभी उर्मिला को लाठी डंडों से मारा पीटा। जिससे पीड़ित के दाहिने हाथ में गंभीर चोट आने से हाथ फैक्चर हो गया। उसके पिता को लात घुसों से मारा पीटा जिससे उनका दांत टूट गया। पीड़ित के मुताबिक उसकी मां, भाभी व भाई के कपड़े भी फाड़ दिए। पीड़ित परिवार किसी तरह जान बचाकर अपने घर में भागे। शोर सुनकर पास पड़ोस के लोग बीच बचाव किए। उक्त लोगों ने जान से मारने की धमकी देते हुए भाग गए। वहीं पीड़ित ने मेजा कोतवाली में तहरीर देकर कार्रवाई की मांग की है।

स्वास्थ्य कर्मचारियों का धरना प्रदर्शन जारी

अखंड भारत संदेश

मेजा रोड। उत्तर प्रदेश राष्ट्रीय स्वास्थ्य कर्मचारी संघ के जिलाध्यक्ष राहुल नायर के निर्देशन में अपनी मांगों को लेकर मेजा सीएचसी परिसर में बुधवार से धरना प्रदर्शन मे बैठे स्वास्थ्य कर्मचारियों का धरना प्रदर्शन दूसरे दिन भी जारी रहा। प्रदर्शन में अपनी मांगों को लेकर आवाज बुलंद करते रहे कर्मचारी। इस दौरान संविदा कर्मचारियों ने कहा कि कोरोना महामारी में भी जान जोखिम में डालकर निरंतर कार्यरत रहे हैं। उनका कहना था कि एक लाख चिकित्सक, पैरामेडिकल, मैनेजमेंट व अन्य एवम दो लाख आशा बहुएं स्वास्थ्य विभाग में कार्यरत हैं। उक्त प्रदर्शन में बताया गया कि पूर्व में अपर सचिव चिकित्सा स्वास्थ्य एवम परिवार कल्याण से वार्ता के दौरान तीन मांगो को पूर्ण किए जाने का प्रावधान रखा गया था। लेकिन केवल दो ही मांग पूरी की जा सकी। इससे कर्मचारी संघ में नाराजगी है। कर्मचारियों ने कहा कि विनियमितीकरण समायोजन व सृजित पदों को पूर्ण किया जाए। वेतन पालिसी एवम वेतन विसंगति को दूर कर सातवां वेतनमान लागू किया जाए। इसके अलावा संघ की मांग है कि गैर जनपद तबादला और आउट सोर्स नीति समाप्त कर आशा बहुओं का मानदेय भी निर्धारित किया जाए। उक्त मांगो को लेकर संविदा कर्मचारी संघ ने बुधवार को मुख्यमंत्री को सम्बोधित पत्र मेजा सीएचसी के अधीक्षक डॉ. ओम प्रकाश को सौंपा था। कर्मचारियों ने चेताया है कि अबिलम्ब उनकी मांगें पूरी नहीं कि गई तो समुचें प्रदेश के कर्मचारी आंदोलन के लिए बाध्य होंगे।

अपनी मांगों को लेकर मेजा सीएचसी परिसर में धरना प्रदर्शन करते स्वास्थ्यकर्मी।

करछना क्षेत्र के किसान इन दिनों डीएपी खाद की किल्लत से जूझ रहे हैं

खाद की कमी से सरकार के प्रति नाराजगी व आक्रोशऔर बढ रहा है

अखंड भारत संदेस

करछना। में कृषि विभाग की ओर से संचालित इफको उर्वरक बिक्री केंद्रों व सहकारिता विभाग की ओर से संचालित अधिकांश साधन सहकारी समितियों में पर्याप्त मात्रा में डीएपी खाद उपलब्ध न होने से क्षेत्रीय किसानों को परेशानी झेलनी पड़ रही है। वही कृषि विभाग की अनदेखी से स्थानीय बाजारों में भीरपुर बाजार व भडेवरा बाजार समेत बसही डीहा वीरपुर बरांव कौवा बरदहा पचदेवरा कटका अकोढा रोकड़ी घटवा राम का पूरा लाला का पूरा आदि बाजारों में ज्यादातर अनाधिकृत रूप से संचालित खाद व बीज की दुकानों पर निजी दुकानदारों की ओर से गुणवत्ता विहीन डीएपी खाद की बिक्री काफी ऊंचे दामों में की जा रही है। जिससे किसान लोग आर्थिक तंगी के शिकार भी हो रहे है ।गौरतलब है कि खाद की कमी से किसानों की गेहूं की बुवाई पिछड़ रही है। जिससे किसान लोग पैदावार के प्रति चिंतित व मायूस हो रहे हैं। साधन सहकारी समिति पथरहिया की खाद की गोदाम खाली पड़ी हुई है। लोगों ने कृषि विभाग व सहकारिता विभाग के जिम्मेदार उच्च अधिकारियों से खाली पड़ी समितियों में शीघ्र पर्याप्त मात्रा में डीएपी खाद उपलब्ध कराए जाने की मांग की है।

मत्स्य पालन की योजनाओं से किसानों को मिलेगा लाभ : आर .एस .यादव

करछना। मत्स्य पालन विभाग द्वारा डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रूबन मिशन योजना अंतर्गत कलस्टर बड़ोखर के 12 ग्राम सभाओं में मत्स्य विकास के लिए परियोजनाओं हेतु लाभार्थियों का चयन किया जा रहा है । उक्त बातें जिला मुख्य कार्यकारी अधिकारी मत्स्य पालन विभाग आर. एस. यादव ने बताया कि चयन हेतु 1.70 हेक्टेयर निजी भूमि पर तालाब निर्माण एवं निवेश यूनिट मध्यम रिसर्कुलरी एक्वाकल्चर सिस्टम में पंगेशियस मत्स्य पालन तथा एक यूनिट मछली परिवहन हेतु ऑटो रिक्शा विद आइस बॉक्स का लोगों से आवेदन लिया जा रहा है । निजी भूमि पर तालाब निर्माण हेतु इकाई लागत सात लाख प्रति हेक्टेयर है एवं प्रथम वर्ष निवेश हेतु इकाई लागत डेढ़ लाख प्रति हेक्टेयर है । मध्यम आर ए एस हेतु पच्चीस लाख प्रति यूनिट है, मछली परिवहन हेतु ई रिक्शा पर तीन लाख यूनिट निर्धारित किया गया है। मत्स्य निरिक्षक इरफान उल्लाह खान ने बताया कि योजनाओं का लाभ लोगों को पहले आओ पहले पाओ के तहत लिया जा रहा है परियोजना लागत का अधिकतम 40% अनुदान मत्स्य पालन विभाग द्वारा देय होगा शेष लागत लाभार्थी को स्वयं चुनना होगा।

हाई कोर्ट ने कहा पुलिस की कहानी झूठी, गलत तरीके से फंसाया था गांजा तस्करी में

प्रयागराज। घर से रात में पकड़ कर केस में फंसाया। जो गांजा जब्त किया, उस पर संदेह है। झूठी कहानी तैयार की। फिर अवैध रूप से गिरफ्तारी की गई। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने यह सख्त टिप्पणी नोएडा के थाना फेज-2 के पुलिस अधिकारियों के लिए की। कोर्ट ने गौतमबुद्धनगर के एसएसपी को तत्कालीन एसएसपी समेत अन्य दोषी पुलिस अफसरों पर कार्रवाई करने के निर्देश दिए हैं। यह आदेश गुरुवार को न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी ने ललित गुप्ता के अधिवक्ता श्रीकृष्ण शुक्ल को सुनकर दिया। कोर्ट ने याची ललित गुप्ता को जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया है। पुलिस पर आरोप है कि हाथरस के सांसी थाना क्षेत्र के निवासी ललित गुप्ता को 4-5 लोग रात में आकर पकड़ ले गए। फिर उसे गांजा तस्करी के फर्जी केस में फंसा दिया। अपर महाधिवक्ता ने भी पुलिस कार्रवाई की ड्राबैक और लूपहोल स्वीकार किए हैं। पुलिस अधिकारियों को तलब किया गया था। कोर्ट ने एफ आई आर दर्ज करने वाले दरोगा रामचंद्र सिंह समेत अन्य पुलिस अधिकारियों के खिलाफ विभागीय जांच करने को कहा। साथ ही दोषी पाए जाने पर कार्रवाई करने का निर्देश दिया है।

14 जून को गांजा तस्करी के आरोप में गिरफ्तार किया था

नोएडा फेजझ2 थाने की पुलिस सादे वेश में हाथरस गई। वहां से ललित गुप्ता को पकड़ लाई। उसे 14 जून को 29.600 किलो अवैध गांजा तस्करी के आरोप में गिरफ्तार किया। याची का कहना था कि उसके खिलाफ 2001 से 2017 तक सांसी थाने में 11 आपराधिक मामले दर्ज हैं। लेकिन 2017 के बाद कोई केस दर्ज नहीं है। अब पुलिस ने फर्जी केस में फंसाया है। कोर्ट ने कहा कि याची अपना आचरण सुधारने में लगा है। जबकि पुलिस ने झूठी कहानी गढ़ कर अपराध में घसीटने की कोशिश की है। जिसके लिए उनके खिलाफ एक्शन होना ही चाहिए।

ब्लॉक संसाधन केंद्र कौंधियारा में स्कूल रेडिनेस प्रशिक्षण कार्यक्रम संपन्न

ब्लाक संसाधन केन्द्र कौधियारा में दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम जानकारी देते

अखंड भारत संदेस

करछना। ब्लाक संसाधन केंद्र कौधियारा में दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम खण्ड शिक्षा अधिकारी कौधियारा अतुल दत्त तिवारी एवं नोडल ए आर पी शत्रुघ्न प्रसाद शुक्ल, के निर्देशन एवं मार्गदर्शन में प्रशिक्षण दिया गया ।जिसमें परिचय सत्र में ही गतिविधियों के माध्यम से परिचय देना प्रशिक्षण की रूपरेखा में चार चाँद लगा दिए। सभी प्रतिभागियों ने गतिविधियों के माध्यम से ही अपना परिचय देकर प्रशिक्षण में उत्साह भर दिए। तत्पश्चात संदर्भदाताओं के द्वारा स्कूल रेडीनेस प्रशिक्षण क्या है, विस्तृत जानकारी दी, बच्चे, विद्यालय, अभिभावक की तैयारी व विद्या ज्ञान प्रवेश के बारे में विस्तार रूप से चर्चा किया गया । प्रशिक्षण में सभी प्रतिभागियों ने सामूहिक एवं एकल रूप से कराई गई गतिविधियों में उत्साहपूर्वक प्रतिभाग किए। इस प्रशिक्षण से प्री-प्राइमरी से कक्षा एक में बच्चों को लाने हेतु किस प्रकार तैयार किया जाय, आंगनवाड़ी की भूमिका व खेल, गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को भाषायी व अंकीय ज्ञान के बारें में समझ पर विस्तार से चर्चा किया। उक्त प्रशिक्षण में सभी संदर्भदाता के रुप में सुरेश कुमार त्रिपाठी, शबनम, रिजवान अहमद, वन्दना श्रीवास्तव, स्वाती सिंह, धर्मेन्द्र सिंह एवं शंखधर द्विवेदी जी ने प्रशिक्षण दिया। बच्चों के विकासात्मक, शारीरिक एंव मानसिकविकास में वृद्धि पर आधारित दो दिवसीय प्रशिक्षण का आज समापन हुआ।

आनलाइन काव्य गोष्ठी का आयोजन सम्पन्न

कोरांव। मानवधर्मी साहित्य शोध सेवा संस्थान उप्र भारत द्वारा संविधान दिवस - 2021 के पावन उपलक्ष्य में आनलाइन काव्य गोष्ठी का आयोजन दिनांक 30 -11-2021 को सायं 6 से 9 बजे तक किया गया जो संविधान विषय पर आधारित था। इसमें पूरे देश के कवि-कवयित्रियों ने भाग लिया। कार्यक्रम में समतावादी कलमकार साहित्य शोध संस्थान भारत, के अध्यक्ष आदरणीय श्री बुद्धि सागर गौतम जी गोरखपुर, की मुख्य अतिथि के रूप में गरिमामयी उपस्थिति रही। बहुमुखी प्रतिभा के धनी बुद्ध प्रिय सुरेश सौरभ गाजीपुरी जी ने कुशल मंच संचालन कर सबका मन मोह लिया। कार्यक्रम का शुभारंभ श्रीमती इंदु रवि जी गाजियाबाद द्वारा संविधान की प्रस्तावना का पाठ कर किया गया। पवन कुमार जी औरंगाबाद, बिहार से,आदरणीय एम के मौजी जी, व डा. दुर्गा प्रसाद जी, छत्तीसगढ़ से, अमित कुमार बौद्ध जी रामपुर उप्र से अपनी सुन्दर रचना का पाठ कर मंच को अभिभूत किया। मंचासीन वरिष्ठ कवि डा. (प्रो.) शरद नारायण खरे जी, मध्य प्रदेश से 'संविधान दिवस व बाबा साहब' के ऊपर मुक्तक सुनाकर सबको मंत्र मुग्ध कर दिया। मोहन लाल सोनल मनहंस जी पाली राजस्थान से 'पर्व मेरी आजादी का' सुनाकर खूब वाहवाही लूटी। श्रीमती प्रज्ञा आंबेरकर जी ने महाराष्ट्र का प्रतिनिधित्व किया, जिनकी रचना बेमिसाल रही। श्रीमती नंदिनी भारती जी ने छत्तीसगढ़ की धरती से 'संविधान हूँ मैं' का उद्घोष किया। पुष्पराज देवहरे जी भारतवासी, रायपुर, छत्तीसगढ़ से 'तुमको जगाने आया हूँ' सुनाकर श्रोताओं का हृदय जीत लिया तो श्री मनोज कुमार पुरें मौजी, मुंगेली, छत्तीसगढ़ से 'पढ़ना है संविधान अब' की प्रतिबद्धता जतायी। इसी क्रम में हरीश पाण्डल जी, व श्रीमती जलेश्वरी गेंदले जी छत्तीसगढ़ से, संजय कुमार स्नेही जी आजमगढ़ से, सिद्धार्थ प्रकाश जी मथुरा से, ऋषि कुमार प्रभाकर प्रयागराज से मंच पर उपस्थित होकर अपने काव्यपाठ द्वारा गोष्ठी में चार चांद लगा दिया। सम्पूर्ण कार्यक्रम मानवधर्मी साहित्य शोध सेवा संस्थान उ प्र भारत के अध्यक्ष चन्दन कुमार 'मानवधर्मी' जी के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। अंत में अध्यक्ष ने मुख्य अतिथि बुद्धि सागर गौतम जी तथा मंच का संचालन कर रहे पटल रत्न सुरेश सौरभ गाजीपुरी जी को संविधान की प्रति भेंट कर सम्मानित किया।

पदों के मुकाबले सिर्फ 11 गुना अभ्यर्थी पास, रिजल्ट जारी होते ही उठे सवाल

अखंड भारत संदेश

प्रयागराज। पीसीएस-2021 का परिणाम दो मायनों में अप्रत्याशित रहा। उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (यूपीपीएससी) ने पहली बार इतने कम समय में परिणाम जारी किया। वहीं, बड़ी संख्या में अभ्यर्थी सामान्य अध्ययन का द्वितीय प्रश्नपत्र (सीसैट) क्वालीफाई नहीं कर सके। नतीजा कि पदों की संख्या के मुकाबले महज 11 गुना अभ्यर्थी मुख्य परीक्षा के लिए सफल घोषित किए गए, जबकि मानक 15 गुना का है। विशेषज्ञों ने पहले ही आशंका जताई थी कि इस बार सीसैट का पेपर उलझाऊ था और ऐसे में अभ्यर्थियों के लिए क्वालीफाई करना पड़ा चुनौती साबित होगी। वहीं, यूपीपीएससी ने हाल ही में निर्णय लिया था कि प्रारंभिक परीक्षा में पदों की संख्या के मुकाबले अब 15 गुना अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा के लिए और मुख्य परीक्षा में तीन गुना अभ्यर्थियों को इंटरव्यू के लिए क्वालीफाई कराया जाएगा। इससे पूर्व क्रमशः 13 गुना एवं दो गुना अभ्यर्थियों को क्वालीफाई कराया जा रहा था। बुधवार को प्रारंभिक परीक्षा का परिणाम जारी हुआ तो अभ्यर्थियों को तगड़ा झटका लगा। 694 पदों के मुकाबले केवल 7688 अभ्यर्थी मुख्य परीक्षा के लिए सफल घोषित किए गए, जो पदों की संख्या के मुकाबले 11.33 गुना है। वहीं, एसीएफ/ आरएफओ के 16 पदों के लिए 296 अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा के लिए क्वालीफाई कराया गया है, जो आयोग की ओर से निर्धारित मानक के अनुरूप है। प्रतियोगी छात्र संघर्ष समिति के मीडिया प्रभारी प्रशांत पांडेय का आरोप है कि पीसीएस प्रारंभिक परीक्षा का रिजल्ट साफ संकेत दे रहा है कि आयोग अपने ही नियम को नहीं मानता है। प्रशांत ने रिजल्ट में संशोधन की मांग की है।

आयोग का दावा, कई ग्रुपों में 15 गुना अभ्यर्थी पास

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग का दावा है कि कई पीसीएस प्रारंभिक परीक्षा में कई ग्रुपों में पदों की संख्या के मुकाबले 15 गुना अभ्यर्थियों को सफल घोषित किया गया है। आयोग के सचिव जगदीश के अनुसार क्वालिफिकेशन के आधार पर पीसीएस के पद सात से आठ ग्रुपों में बंटे होते हैं। सभी अभ्यर्थियों को द्वितीय प्रश्नपत्र सीसैट में न्यूनतम 33 फीसदी अंक लाना अनिवार्य है। न्यूनतम अंक पाने पर ही प्रथम प्रश्नपत्र की ओएमआर जांची जाती है। परिणाम में सीसैट पेपर में मिले अंक नहीं जोड़े जाते हैं। कुछ ग्रुपों में बड़ी संख्या में अभ्यर्थी सीसैट के पेपर में 33 फीसदी अंक प्राप्त नहीं कर सके। इसके अलावा प्रथम प्रश्नपत्र में भी सामान्य और ओबीसी अभ्यर्थियों के लिए न्यूनतम 40 फीसदी और एससी एवं एसटी वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए न्यूनतम 35 फीसदी अंक की अनिवार्यता है। यहां भी न्यूनतम अर्हता अंक प्राप्त न कर पाने के कारण कुछ ग्रुपों में अभ्यर्थी छंट गए। वहीं, कई ग्रुपों में पदों की संख्या के मुकाबले 15 गुना या इससे अधिक अभ्यर्थी सफल घोषित किए गए हैं।

काशी विश्वनाथ मंदिर में वीआईपी दर्शन के खिलाफ याचिका खारिज

प्रयागराज। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने काशी विश्वनाथ मंदिर में सुगम दर्शन योजना के तहत अधिक शुल्क लेकर वीआईपी दर्शन करने के खिलाफ याचिका खारिज कर दी है। कोर्ट ने इस मामले में न्यासी बोर्ड के निर्णय में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हुए कहा कि जब कानून में न्यासी बोर्ड को शुल्क तय करने व पूजा व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया है तो वह सुगम दर्शन के लिए निर्णय ले सकता है। उसका यह निर्णय न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति में नहीं आता। यह आदेश न्यायमूर्ति मनोज मिश्र तथा न्यायमूर्ति समीर जैन की खंडपीठ ने गजेंद्र सिंह यादव की जनहित याचिका पर दिया है। इस योजना के तहत कुछ राशि के भुगतान के आधार पर वीआईपी दर्शन कराने की सुविधा देने की व्यवस्था है। सरकार ने कहा यह सुविधा शारीरिक या अन्य रूप से लाइन में खड़े होकर दर्शन करने में असमर्थ श्रद्धालुओं के लिए जरूरी है। याची का कहना था कि योजना से वीआईपी कल्चर को बढ़ावा मिलेगा। जोकि संविधान के अनुच्छेद 14 ,15, 25 और 26 के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन तथा नागरिकों में भेदभाव करने वाली है। कोर्ट ने कहा कि न्यासी बोर्ड को फैसले लेने का अधिकार है। इसमें हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

शारीरिक रूप से अक्षम लोगों के लिए है योजना

यूपी सरकार व मंदिर प्रशासन समिति की दलील थी कि सुगम दर्शन योजना किसी को रोकने या पूजा में रुकावट पैदा करने के लिए नहीं है। यह सुविधा उपलब्ध कराने की योजना है। आम दर्शनार्थियों पर इसका कोई असर नहीं पड़ेगा। सुगम दर्शन योजना शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को सुविधा प्रदान करने के लिए है। इसके लिए उनसे सिर्फ नाम मात्र का शुल्क लिया जाएगा। यह सुविधा वीआईपी कल्चर को बढ़ावा देने के लिए नहीं, बल्कि लोगों की मदद के लिए है। इससे आम श्रद्धालुओं को कोई दिक्कत नहीं होगी। सुगम दर्शन करने वालों को भी आम श्रद्धालुओं की तरह ही गर्भ गृह में रुकने का समय मिलेगा। काशी विश्वनाथ मंदिर के न्यासी बोर्ड ने पिछले दिनों सुगम दर्शन योजना शुरू करने का फैसला लिया था। इस योजना के तहत कुछ पैसों का भुगतान कर भीड़ से अलग गर्भ गृह में जाकर दर्शन किए जा सकते हैं ।मामले में सुप्रीम कोर्ट के आदि विश्वेश्वर काशी विश्वनाथ मंदिर वाराणसी केस के फैसले का हवाला दिया गया, जिसमें कहा गया है कि प्रत्येक हिंदू को मंदिर में प्रवेश करने व पूजा, दर्शन व शिवलिंग को छूने का अधिकार है। शास्त्रों के अनुसार सभी को पूजा दर्शन का धार्मिक अधिकार है। यह संविधानिक है।

खबर संक्षेप

दम्पति के मकान पर दबंग का कब्जा एसएसपी से शिकायत

करछना। क्षेत्र के डीहा गांव मे एक मकान पर गांव के ही कुछ दबंगो द्वारा जबरन कब्जा किया जा रहा है जिसे लेकर कईबार शिकायत करने के बावजूद भी दबगो के खिलाफ कोई कार्यवाही नही की जा रही है जिससे परेशान होकर शारदा प्रसाद सोनी किराये के मकान मे रहने को विवश है। शिकायती पत्र के मुताबिक शारदा प्रसाद जब भी अपने मकान मे रहने के लिए जाता है तो दबगो द्वारा धमकी देकर भगा दिया जाता है। भुक्तभोगी कई बार एसडीएम से शिकायत करने के बाद एसएसपी से भी दंबगो के खिलाफ शिकायत कर चुका है लेकिन आज तक उसे न्याय नही मिला।

सविदा कर्मियो की अनिश्चित कालीन हडताल जारी

करछना। उ0प्र0 राष्टीय स्वास्थ मिशन सविदा कर्मचारियो का अि?श्चित कालीन हडताल जारी है जिसमे उनकी सात सूत्रीय मागो को लेकर धरना प्रदर्शन कर रहे है।जिसमे प्रमुख रूप से वेतन विसंगति का साथ ही समायोजन आदि को लेकर सविदा कर्मियो ने हाथो मे स्लोगन लिखि तख्तियो के साथ सीएचसी गेट पर प्रदर्शन करते हुए अधीक्षक डा0 नवीन गिरी को सात सूत्रीय मागपत्र भी सौपा। इस मौके पर सावित्री देवी, शीला देवी निहारिका पाडेय, सरोज कुमारी, रीना पाडेय, रेनू सिह, मीनाक्षी, अजली कुमारी, अकाक्षा, पूनम सिह दिव्या मौर्या, अभिलाषा दिक्षित, श्वेता तिवारी, नगीना देवी तारा देवी, अर्चना गौतम, अभिषेक पाडेय आदि रहे।

शांतिभंग में एक का चालान

नैनी। औद्योगिक क्षेत्र के गोंती गांव के रहने वाले राजेंद्र सिंह उर्फ ननके पुत्र नवरंग बहादुर सिंह गुरुवार को किसी पुराने मामले में गांव में ही बेवजह है विवाद कर रहा था। सूचना मिलने पर पुलिस मौके पर पहुंची और उसे गिरफ्तार कर थाने पर उठा लाई। पुलिस ने कानूनी कार्रवाई करते हुए शांतिभंग के आरोप में चालान कर दिए।

दोस्त ने दोस्त के सीने में उतारी 5 गोली मौत, घर में मचा कोहराम

मामूली कहासुनी में उतार दी सीने में 5 गोली, पैसे के लेनदेन में चली थी गोली, शराब के नशे में थे तीनों दोस्त

मौत के बाद रोते बिलखते परिजन

घटनास्थल पर निरीक्षण करते पुलिस के अधिकारी

घटनास्थल पर जानकारी देते एसपी सिटी।

अखंड भारत संदेश

प्रयागराज। जार्जटाउन थाना क्षेत्र में मेडिकल चौराहे के पास स्थित एक दवा दुकान में बुधवार की रात ठेकेदार बच्चा यादव की उसके दोस्त ने ही गोली मारकर हत्या कर दी। सभी ने बगल में मॉडल शाप में बैठकर शराब पी फिर दवा दुकान में बैठकर बातें करने लगे। इसी दौरान कोई विवाद हो गया। गोली मारकर बच्चा के दोनों दोस्त मौके से फरार हो गए। उनकी तलाश में दबिश दी जा रही है। बाबा जी का बाग अतरसुइया का रहने वाला बच्चा यादव (45) नगर निगम में ठेकेदार था। सलोरी के महेंद्र यादव और अशोक नगर के राजेश यादव के साथ उसने वीरेंद्र कंस्ट्रक्शन कंपनी भी बनाई थी। तीनों में गहरी दोस्ती थी। तीनों प्रतिदिन शाम को मेडिकल चौराहे के पास मॉडल शाप में बैठकर शराब पीते थे। बगल में ही उनके दोस्त की दवा की दुकान है। माडल शॉप से निकलकर तीनों कुछ देर मेडिकल दुकान में भी बैठते थे।बुधवार की रात भी तीनों शराब पीने के बाद मेडिकल शॉप में बैठे थे। बातचीत के दौरान ही तीनों में कोई विवाद हुआ और कहासुनी होने लगी। इसी बीच महेंद्र यादव को तैश आ गया। उसने अपनी पिस्टल से बच्चा यादव पर फायरिंग शुरू कर दी। एक के बाद एक कई गोलियां मारीं। बच्चा की मौके पर ही मौत हो गई। इसके बाद महेंद्र और राजेश वहां से भाग निकले। सरेशाम हत्या से वहां हड़कंप मच गया। सूचना पर डीआईजी सर्वश्रेष्ठ त्रिपाठी, एसपी सिटी दिनेश सिंह और सीओ समेत तमाम अधिकारी पहुंच गए। एसपी सिटी के मुताबिक तीनों न सिर्फ पार्टनर थे बल्कि बहुत ही गहरे दोस्त थे। दुकान पर जाने के बाद किस बात पर विवाद हो गया, इसका पता महेंद्र और राजेश के पकड़े जाने पर चलेगा। उनकी तलाश में दबिश दी जा रही है। भतीजे ने कहा यकीन नहीं होता बच्चा यादव की हत्या के बाद पुलिस अधिकारियों ने घर में सूचना दी तो बच्चा का भतीजा तुरंत मौके पर पहुंच गया। जब पुलिस वालों ने बताया कि महेंद्र और राजेश ने ही घटना को अंजाम दिया है, तो उसे यकीन ही नहीं हुआ। बच्चा अपने घर वालों से ज्यादा अपने दोस्तों को मानता था।

घटना के बाद पत्नी बच्चे हुए बधहवास

बाबा जी का बाग अतरसुइया के रहने वाले बच्चा यादव के घर में उसकी हत्या की सूचना पहुंची तो घर वाले बदहवास हो गए। बच्चा कुछ घंटे पहले ही घर से सही सलामत निकला था। बच्चा की दो बेटियों बेबो व छवि और बेटे शिवांग का रो रोकर बुरा हाल था। पत्नी रेनू रोते-रोते बेहोश हो गई।वहीं एसपी सिटी ने बताया कि बच्चा और उसके दोस्त ठेकेदारी करते थे। तीनों ने एक कंस्ट्रक्शन कंपनी भी बनाई जिसके वे पार्टनर थे। शराब पीने के बाद आपस में कोई बात हुई। जिसके बाद बच्चा की गोली मारकर हत्या कर दी गई।

दोस्त का कातिल चढ़ा पुलिस के हत्थे, एक फरार

प्रयागराज। मेडिकल चौराहे पर एक दिन पहले हुई ठेकेदार वीरेंद्र यादव उर्फ बच्चा की हत्या में नामजद एक दोस्त राजेश यादव दूसरे दिन गिरफ्तार कर लिया गया। उससे पूछताछ में चौंकाने वाला खुलासा हुआ है। पता चला है कि मृतक पर एक अन्य दोस्त महेंद्र यादव के साथ उसने भी गोलियां दागी थीं। वारदात में उसने भी अपनी लाइसेंसी पिस्टल का इस्तेमाल किया था। पुलिस ने उससे असलहा बरामद कर लिया है। उधर दूसरा आरोपी फरार है जिसकी तलाश की जा रही है। अतसुइया के बाबा जी का बाग में रहने वाले नगर निगम के ठेकेदार वीरेंद्र को बुधवार रात मेडिकल कॉलेज चौराहे के पास गोलियों से भून दिया गया था। मृतकों ने लेनदेन के विवाद में वारदात को अंजाम देने का आरोप लगाते हुए मृतक के ही दोस्त महेंद्र यादव निवासी सलोरी और राजेश यादव निवासी अशोक नगर को नामजद कराया था। देर रात दोनों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर पुलिस उनकी तलाश में जुटी थी।

दोनों दोस्त ने लाइसेंसी पिस्टल से चलाई थी गोली

गुरुवार को सटीक सूचना पर जार्जटाउन क्षेत्र से ही राजेश को गिरफ्तार कर लिया। सूत्रों का कहना है कि उसने पूछताछ में बताया है कि मृतक वीरेंद्र पर महेंद्र के साथ उसने भी गोलियां दागी थीं। दोनों ने अपनी लाइसेंसी पिस्टल से गोलियां बरसाकर उसे मौत के घाट उतारा था। पुलिस ने उसके कब्जे से पिस्टल भी बरामद कर ली है। सीओ अजीत सिंह चौहान ने बताया कि एक नामजद आरोपी को गिरफ्तार कर लिया गया है। दूसरे की तलाश में कर्नलगंज समेत कई जगहों पर दबिश डाली गई है। उसकी तलाश में टीमें लगाई गई हैं।

अंत्येष्टि से लौट रहे पति-पत्नी की सड़क हादसे में मौत ,भाई घायल

अखंड भारत संदेश

एक ही बाइक पर सवार थे तीन लोग

प्रयागराज। होलागढ़ के भगौतीपुर खुटहना के पास ट्रक की चपेट में आने से चंद्रशेखर और उसकी पत्नी चांदनी की मौत हो गई। चंद्रशेखर का भाई मंगलेश्वर भी बाइक पर सवार था। वह भी गंभीर रूप से घायल हुआ है। तीनों किसी रिश्तेदार की अंत्येष्टि से लौट रहे थे, उसी समय हादसा हो गया। सूचना पर घर में हाहाकार मच गया। चांटी गांव निवासी चंद्रशेखर (35) पत्नी चांदनी (30) पत्नी चन्द्रशेखर और छोटे भाई मंगलेश्वर उफ?र पप्पू (28) के साथ बाइक से एक रिश्तेदार के घर अंत्येष्टि में गए थे। देर शाम तीनों वापस लौट रहे थे। भगौतीपुर खुटहना गांव के पास जैसे ही उनकी बाइक पहुंची। सामने से आ रहे ट्रक ने टक्कर मार दी। तीनों सड़क पर गिर पड़े। ट्रक ने चंद्रशेखर, चांदनी और मंगलेश्वर को कुचलता हुआ आगे बढ़ गया।चंद्रशेखर और चांदनी की मौके पर मौत हो गई। मंगलेश्वर को गंभीर हालत में अस्पताल में भर्ती कराया गया। सूचना पर घर वाले पहुंच गए। बेटे बहु की लाशें देखकर वे रोने लगे। एसओ होलागढ़ अमित सिंह ने बताया कि ट्रक पकड़ लिया गया है। घर वालों ने तहरीर नहीं दी है। तहरीर मिलते ही रिपोर्ट कर ली जाएगी।

भजन गायक सूर्य प्रकाश दुबे को प्रयाग धरोहर से डिप्टी सीएम ने किया सम्मानित

प्रयागराज। उप मुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य द्वारा सुप्रसिद्ध भजन गायक सूर्य प्रकाश दुबे को प्रयाग धरोहर सम्मान से नवाजा है ' आपको बताते चलें कि प्रयागराज के रहने वाले सूर्य प्रकाश दुबे जो मुंबई में रहकर पिछले 15 सालों से निरंतर प्रयागराज की महिमा पूरे देश विदेश में गाने और बखानने के लिए मशहूर हैं ' बता दें कि टी सीरीज बैनर तले हजारों भजन गंगा मैया और बहुत सारे देवी देवताओं पर गा चुके हैं वही 2016 में प्रयाग गौरव रत्न से भी नवाजा गया था ' कार्यक्रम के दौरान सूर्या जी ने विभिन्न गानों को प्रस्तुत किया जिससे उपस्थित श्रोताओं ने खूब तालियां बजाई कार्यक्रम आयोजक काशी प्रांत के उपाध्यक्ष अवधेश गुप्ता तथा विधायक हर्षवर्धन बाजपेई तीर्थराज पांडे ,गणेश केसरवानी जी रहे तथा उपस्थित लोगों का सूर्य प्रकाश ने सबका धन्यवाद किया कहा कि आखरी सांस तक प्रयागराज की महिमा का देश विदेश में अवसर मिलता रहेगा तो बखान करते रहेंगे।

छात्रावास की स्मृतियां ताजा कर भाव विभोर हुए मेला अधिकारी

अखंड भारत संदेश

बैचमेट ने पुरा छात्रों पर लिखी पुस्तक मेला अधिकारी को सौंपा

प्रयागराज। माघ मेला अधिकारी प्रयागराज शेषमणि पांडेय के सहपाठी राघवेन्द्र सिंह ने इविवि के हालैण्ड हाल स्मृतियों के वातायन की प्रति माघ मेला कार्यालय में गुरुवार को सौपा। मेलाधिकारी शेषमणि पाण्डेय हालैण्ड हाल की स्मृतियों में खो गये। उन्होंने पढाई और तैयारी के दौरान के कई संस्मरणों को सुनाते हुए यादें ताजा की । उन्होंने बताया कि हालैण्ड हाल से शिक्षा, राजनीति, समाज सेवा और प्रशासनिक क्षेत्र में कई विशिष्ट पदो पर कार्य किया और आज कार्य भी कर रहे है। मेलाधिकारी श्री पाण्डेय ने इस दौरान कई वरिष्ठ, समकक्ष और जूनियर सहपाठियों के बारे में विस्तार से चर्चा किया। इस दौरान वरिष्ठ प्रवक्ता राघवेंद्र सिंह ने बताया कि पूर्व राज्यपाल और मुख्यमंत्री एससी जमीर, असम के पूर्व चीफ सेक्रेटरी हर्ष महान, उत्तराखंड के पूर्व चीफ सेक्रेटरी नृप सिंह न्याल, वरिष्ठ साहित्यकार रामकुमार वर्मा सहित अन्य प्रमुख लोग थे। किन्नर अखाडा की प्रयागराज की महामंडलेश्वर स्वामी कल्याणीनंद गिरि ने विवि की सभी क्षेत्रों की उपलब्धियों पर विस्तार से बात रखी । उन्होंने कहा कि विवि देश ही नही विश्व के विवि में विशिष्ट स्थान रखता है। इस दौरान किन्नर अखाडा प्रयागराज की महामंडलेश्वर स्वामी कल्याणीनंद गिरि, वरिष्ठ प्रवक्ता राघवेंद्र सिंह, एडवोकेट अभिषेक तिवारी सहित अन्य लोग थे।

चोरी के उपकरण के साथ वांछित आरोपी गिरफ्तार

नैनी। औद्योगिक क्षेत्र के डेरी नेवादा समोगर गांव के रहने वाले विशाल केसरवानी पुत्र सूर्यभान केसरवानी चोरी के मामले में पहले भी सलाखों के पीछे जा चुका है। उसके खिलाफ औद्योगिक क्षेत्र में चार मुकदमा पंजीकृत हैं। बीते दिनों क्षेत्र में चोरी के आरोप में नामजद हुआ था, लेकिन हर बार पुलिस को चकमा देकर फरार हो जाता था। गुरुवार को थाना प्रभारी संजीव कुमार चौबे को जरिए मुखबिर से सूचना मिली की उक्त आरोपी विशाल केसरवानी डेरी तिराहे के समीप चोरी के उपकरणों के साथ मौजूद है। सटीक सूचना मिलते ही थाना प्रभारी के निर्देश पर रामपुर पुलिस चौकी प्रभारी विनय कुमार गुरुदेव व कांस्टेबल बृजेश कुमार राय उक्त स्थान पर पहुंचे और घेराबंदी करते हुए उसे गिरफ्तार कर थाने पर उठा लाए। पुलिस के मुताबिक पकड़े गए वांछित अभियुक्त के कब्जे से नलकूप से जुड़े प्लास्टिक के कई उपकरण बरामद किए गए हैं। हालांकि पुलिस ने आरोपी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करते हुए चालान कर दिए।

कागजों पर खूले है क्रय केंद्र नहीं हो रही तौल

अखंड भारत संदेश

बिचौलियों के माध्यम से हो रही क्रय केंद्र पर खरिद : राजेश पांडेय

कोरांव। आपको बता दें कि आज बृहस्पतिवार को भारतीय किसान यूनियन भानु के पदाधिकारियों ने क्रय केंद्र गल्ला मंडी कोरांव तराव में पहुंचे जहां पर कागज में सासन द्वारा चार क्रय केंद्र खोले गए हैं लेकिन मौके पर दो का मां तारा व प्रयागराज का बोर्ड लगा दिखाई दिया जब की सासन द्वारा एक नवंबर से ही धान खरीदी केन्द्रों पर चालू है लेकिन निश्चित रूप से सक्षम अधिकारियों के उदासीनता के कारण अभी क्षेत्र में लगभग 37 क्रय केंद्रों में महज आठ या दस क्रय केंद्र ही धरातल पर चलते दिखाई दे रहे हैं वही केंद्र प्रभारियों से बातचीत करने के बाद चर्चीत किसान नेता मंडल उपाध्यक्ष भारतीय किसान यूनियन भानू राजेश पांडे ने कहा कि जिस तरह से किसानों को क्रय केंद्र प्रभारियों द्वारा कहीं सरवर ना होने बोरी की कमी बहाना बना रहे हैं इससे यह प्रतीत होता है कि किसानों की धान सीधे कर केंद्र पर तौल न हो बिचौलियों के माध्यम से क्रय केंद्र प्रभारी खरीद कर रहे हैं वहीं प्रसासन को चेतावनी देते हुए कहा कि अगर तत्काल सूधार नहीं किया गया तो पांच दिसंबर को कोरांव कार्यालय पर संगठन की बैठक में आंदोलन की रणनीति बनाएंगे मंडल सचिव प्रकाश सिंह पटेल ने अधिकारियों को किसान संगठन द्वारा आमरण अनशन में किए गए वादे को याद दिलाते हुए कहा कि 2 दिसंबर तक लिया गया सभी वादे अधिकारियों द्वारा पूरा हो गए हैं अगर 5 जनवरी तक सासन द्वारा निर्धारित सभी क्रय केंद्र नहीं खोले जाते तो किसान अपनी धान तहसील आवास के अंदर ले आ कर रखना प्रारंभ करेगा इसकी जिम्मेदारी शासन प्रशासन की मानी जाएगी जिसमें प्रमूख रूप से दिनेश पटेल मनोज सोनी पूष्पराज शूक्ला मंगला कोल आदि लोग मौजूद रहे।

कार्यालय ग्राम पंचायत बैदवार कला कोरांव प्रयागराज

निविदा सूचना

राज्य वित्त, 14वां वित्त, 15 वा वित्त ,मनरेगा, द्वारा ग्राम पंचायत बैदवार कला कोरांव प्रयागराज में मृत्यु अंत्येष्टि स्थल के निर्माण कार्य हेतु,सचिवालय पंचायत भवन मरम्मत कार्य, विवाह घर,आंगनबाड़ी केंद्र भवन,नदी नाला में रपटा,पुलिया, उप स्वास्थ्य केंद्र, कब्रिस्तान, अस्मशान की बाउंड्री वाल, विलेज हाट,पेयजल टंकी, बाउंड्रीवॉल, इंटरलॉकिंग कार्य, टाइल्स ,फर्श, विद्युत वितरण , इनवर्टर मेज कुर्सी आलमारी वगैरह, विद्यालय भवन एवं सचिवालय भवन प्रांगण में इंटरलॉकिंग कार्य ग्राम पंचायत में नाली पक्की निर्माण, डब्ल्यू बी एम कार्य, ग्राम में हैंडपंप मरम्मत कार्य, हैंडपंप रिबोर कार्य व ग्राम में पेयजल टंकी , रनिंग वाटर आदि कार्य ग्राम पंचायत में प्रवेश द्वार निर्माण कार्य, पंचायत भवन प्राइमरी स्कूल आंगनवाड़ी केंद्र की रंगाई पुताई, वॉल पेंटिंग, ह्यूम पाइप , चेक डैम निर्माण कार्य ,बंधा निर्माण कार्य, ब्रीड गार्ड, स्ट्रीट लाइट व सोलर लाइट, प्रशासनिक व्यय, स्कूल में इंटरलॉकिंग कार्य ,स्कूल के फिल्ड में मिट्टी पटाई कार्य,गांव में चबूतरा निर्माण कार्य, कूप जगत निर्माण कार्य, ग्राम सभा में हैंड पंप चरही निर्माण कार्य, ग्राम की सभी पक्की रोडो मार्गो की सफाई, मरम्मत मिट्टी पटाई, ग्राम पंचायत में पेयजल टैंकर क्रय किए जाने का कार्य, मनरेगा से नाली, इंटरलॉकिंग, कच्ची संपर्क मार्ग, तालाबों की खुदाई सफाई सुंदरीकरण,वृक्षारोपण,मार्गों की सफाई , गौशाला, कैटिल सेड मुर्गी, बकरी ,सूअर, पालन ,डेरी ,सफाई कर्मी किट, खड़ंजा कार्य, मिट्टी पटाई, मेड़बंदी,समतलीकरण, आदि निर्माण कार्य हेतु दिनांक 2 दिसंबर 2021 से 9 दिसंबर -2021 तक सील बंद निविदा अधोहस्ताक्षरी कार्यालय में आमंत्रित की जाती है ' जो दिनांक 11दिसंबर 2021 को पंचायत भवन या प्राइमरी स्कूल में उपस्थित फर्मों के समक्ष खोला जाएगा। फर्मो का जीएसटी नंबर होना अनिवार्य होगा निविदा स्वीकृत, अस्वीकृत करने का अधिकार समिति के पास होगा ' सामग्री की मात्रा ग्राम पंचायत में स्वीकृत आकलन,प्राक्कलन के अनुसार पृथक -पृथक होगा। निविदा ग्राम पंचायत में वित्तीय वर्ष 2020-21 में कराए जाने हेतु सभी कार्यों में प्रभावी होगी।

कुसुम कुमारी	शशिलेंद्र सिंह
(ग्राम प्रधान)	ग्राम पंचायत अधिकारी
बैदवार कला	बैदवार कला
कोरांव प्रयागराज	कोरांव प्रयागराज

धड़ल्ले से चल रहा अवैध सिलिका सैंड का कारोबार, जिम्मेदार मौन

शिकायत के बावजूद भी नहीं हुई कार्यवाई, खनन माफियाओं के हौसले बुलंद

अखंड भारत संदेश

सिलिका सैंड के खदान में मौजूद लोग

खदान में आए दिन डूबने से होती है मौत जिम्मेदार कौन

लालापुर। ज्ञात हो कि सिलिका सैंड के खदानों में डूब कर कई लोगों की जान भी जा चुकी है, अभी कुछ महीने पहले लालापुर थाना क्षेत्र के गिधार गांव में एक ही परिवार के तीन लोगों की डूब कर मौत हो चुकी है, लेकिन खनन माफियाओं को इसका कोई भय नहीं है।लालापुर से लेकर बघला पहाड़ी तक सिलिका सैंड का अवैध कारोबार जोरों पर है।अब देखना ये है कि लालापुर पुलिस खनन माफियाओं के खिलाफ क्या कार्यवाही करती है।

लालापुर। थाना क्षेत्र में इन दिनों अवैध खनन जोरों पर फल फूल रहा है लेकिन शासन प्रशासन मौन धारण किये हुए है। लालापुर थाना क्षेत्र के मंदुरी, सोनवै, गोल्हैया, बघला व कोटा आदि दर्जनों गाँवो की पहाड़ियों मे सिलिका सैंट का अवैध खनन धड़ल्ले से जारी है। प्रशासन को पूरी जानकारी होने के बावजूद भी कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है। लालापुर के नए थाना प्रभारी शेर सिंह भी अवैध खनन पर अंकुश लगाने मे नाकाम साबित होते दिख रहे हैं। सूत्रों की माने तो खनन माफियाओं द्वारा थाने पर मोटी रकम पहुंचाई जाती है जिसके चलते स्थानीय पुलिस प्रशासन द्वारा कोई भी कार्रवाई नहीं की जा रही है। खनन माफियाओं के हौसले इतने बुलंद होते जा रहे हैं कि लोगों की अपनी भूमिधरी भी इनसे नहीं बच पा रही है, मना करने पर अभद्र भाषाओं का प्रयोग करते हैं। बुजुर्गों द्वारा कही गई पुरानी कहावत ₹एक तो चोरी, ऊपर से सीनाजोरी₹ यहाँ पर चरितार्थ होती दिख रही है। खनन माफियाओं द्वारा पहाड़ियों की खुदाई कर पर्यावरण को भी काफी क्षति पहुंचाई जा रही है।

एक ही दिन प्रवक्ता और आरओ परीक्षा, छात्र परेशान

प्रयागराज। उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग की ओर से प्रस्तावित प्रवक्ता पॉलीटेक्निक और हाईकोर्ट की समीक्षा अधिकारी भर्ती परीक्षा एक ही दिन 12 दिसंबर को पड़ने से प्रतियोगी छात्र परेशान हैं। अभ्यर्थियों ने आयोग के सचिव को ज्ञापन देकर प्रवक्ता पॉलीटेक्निक की परीक्षा तिथि 12 दिसंबर को स्थगित करते हुए कुछ समय के बाद आयोजित करने की गुहार लगाई है। ताकि वे हाईकोर्ट की समीक्षा अधिकारी भर्ती परीक्षा में शामिल हो सकें। छात्रों का कहना है कि हाईकोर्ट ने आरओ भर्ती परीक्षा की तारीख 42 दिन पहले ही घोषित कर दी थी। जबकि लोक सेवा आयोग ने बाद में 12 दिसंबर को परीक्षा का निर्णय लिया। लिहाजा आयोग को परीक्षा आगे ले जाना चाहिए।

मैनपुरी की छात्रा से दुष्कर्म, मौत का मामला : हाईकोर्ट ने प्रधानाध्यापिका, पुलिस की भूमिका पर उठाए सवाल

प्रयागराज। मैनपुरी में नवोदय विद्यालय की छात्रा से दुष्कर्म और मौत के मामले की सुनवाई कर रही इलाहाबाद हाईकोर्ट की पीठ ने पूरे प्रकरण में विद्यालय की प्रधानाध्यापिका और पुलिस की भूमिका पर सवाल उठाए हैं। कोर्ट ने कहा कि क्या वजह है कि साक्ष्य होने के बावजूद एसआईटी ने कोई ठोस कदम नहीं उठाया। घटना के दो साल बाद प्रधानाध्यापिका ने छात्रा के कुछ पत्र एसआईटी को सौंपे हैं। आखिर क्या वजह है कि इस साक्ष्य को इतने दिन तक दबाए रखा गया। जबकि पुलिस इन्हीं पत्रों कोआधार बनाकर छात्रा के परिवार वालों से पूछताछ कर रही है।महेंद्र प्रताप सिंह की याचिका की सुनवाई कर रही मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल तथा न्यायमूर्ति पीयूष अग्रवाल की खंडपीठ ने कहा कि पंचनामा के समय दाखिल फोटोग्राफ में हाथ पर चोट के निशान दिख रहे हैं, जबकि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में इन चोटों का जिक्र नहीं है। कोर्ट ने रंगीन फोटोग्राफ और अन्य साक्ष्य दाखिल करने का निर्देश दिया है। पीड़िता की मां का पॉलीग्राफ टेस्ट कराए जाने के मामले में कोर्ट ने कहा कि मां का मजिस्ट्रेट के समक्ष बयान दर्ज हो जाने के बाद संबंधित मजिस्ट्रेट इस पर निर्णय लेंगे।

एसआईटी ने पेश की जांच रिपोर्ट

एसआईटी की तरफ से जांच की प्रगति रिपोर्ट पेश की गई। राज्य सरकार का पक्ष रख रहे वरिष्ठ अधिवक्ता गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी ने कोर्ट को बताया कि जिन 177 संदिग्धों के डीएनए सैंपल की जांच हैदराबाद की प्रयोगशाला से कराई गई है, उनमें से किसी का भी डीएनए मैच नहीं कर रहा है। इस जांच में एक राजनीतिक व्यक्ति का बेटा भी शामिल है। कोर्ट को बताया गया कि एसआईटी ने पीड़िता की मां, मामा सहित 19 लोगों से पूछताछ कर बयान दर्ज किए हैं। मां पूछताछ के समय बेहोश हो जा रही है। वह जांच में सहयोग नहीं कर रही हैं। एसआईटी जांच में अभी तक संकेत मिले हैं कि पीड़िता पर उसके मां, मामा, नाना का दबाव था। जिसके चलते छात्रा ने खुदकुशी की। असली वजह परिवार को पता होगी। नवोदय विद्यालय की प्रधानाध्यापिका ने एसआईटी को छात्रा के कुछ पत्र दिए हैं। जिस पर पूछताछ की जा रही है, जबकि मां नार्को टेस्ट के लिए तैयार नहीं है।

नये प्लेटफार्म चार और पांच के लिए गाडर की हुई लांचिंग

फुट ओवर ब्रिज से एक से पांच पर जाने और बाहर कालोनी में निकलने का रास्ता तैयार

प्रतापगढ़ में यार्ड रिमॉडलिंग के कार्य में आई तेजी

नये प्लेटफार्म के लिये ओवर ब्रिज पर गाडर लगाते कर्मचारी

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। प्रतापगढ़ रेलवे स्टेशन की सूरत बदलनी शुरू हो गई है। गुरुवार को नये प्लेटफार्म चार और पांच के साथ ही कालोनी साइड की तरफ बाहर जाने के लिए फुट ओवर ब्रिज पर दो गाडर की लांचिंग हुई। जिससे अब प्लेटफार्म एक से पांच और बाहर जाने का रास्ता साफ हो गया है। अब सिर्फ प्लेटफार्म एक के बाहरी हिस्से के गाडर की लांचिंग बाकी है। यह भी जल्द होगा। इस कार्य को करने के लिये इंजीनियरिंग साइड से चार घंटे का ब्लाक लिया गया था। जिससे इस अवधि की ट्रेनों का संचालन प्रभावित रहा।

स्थानीय स्टेशन की यार्ड रिमॉडलिंग का कार्य होना है। जिसमें कई चीजों में अमूलचूल परिवर्तन किया जाना प्रस्तावित है। इसमें दो नये चार और पांच प्लेटफार्म, दोनो तरफ से बाहर आने और जाने के लिए फुट ओवर ब्रिज का निर्माण भी शामिल हैं। प्लेटफार्म चार और पांच का कार्य चल रहा है। उसका बेस बनकर तैयार हो गया है। अभी इसको पक्का करना बाकी है। इस पर जाने के लिए रास्ते का निर्माण यानी फुट ओवर ब्रिज प्राथमिक में है। तीन नम्बर तक फुट ओवर ब्रिज बनकर तैयार था। इस पर आवागमन शुरू भी है। गुरुवार को प्लेटफार्म तीन को चार और पांच से जोड़ते हुये कालोनी में जाने के लिए फुट ओवर ब्रिज पर लोहे का भारी भरकम दो गाडर रखा गया। इसके लिए क्रेनों का इस्तेमाल किया गया। कोई हादसा न हो इसलिए सुबह 8 से दोपहर 12 बजे के बीच ट्रेनों का संचालन बंद करा दिया गया था। यह कार्य राकेश सैनी एक्सक्यूटिव इंजीनियर रेल निर्माण निगम उत्तर रेलवे लखनऊ और एडीईएन निहालुद्दीन की देखरेख में कुशलता से सम्पन्न हुआ। इंजीनियर राकेश सैनी के अनुसार गुरुवार को प्लेटफार्म तीन से चार और पांच को जोड़ते हुये फुट ओवर ब्रिज पर गाडर की लांचिंग हुई। प्लेटफार्म एक से बाहर की ओर का रास्ता अभी बन नहीं पाया है। जो जल्द

भाषण प्रतियोगिता में चयनित को सम्मानित करते अतिथिगण

ब्लॉक स्तरीय भाषण प्रतियोगिता का हुआ आयोजन

अखंड भारत संदेश

पट्टी, प्रतापगढ़। युवा कार्यक्रम एवम खेल मंत्रालय भारत सरकार द्वारा प्रायोजित नेहरू युवा केन्द्र प्रतापगढ़ के तत्वावधान में ब्लॉक कोआर्डिनेटर, राष्ट्रीय युवा स्वयंसेवक आदर्श मिश्रा द्वारा विकास खण्ड स्तरीय भाषण प्रतियोगिता का आयोजन क्षेत्र के लाल बहादुर इंटर कॉलेज गोपालपुर में आयोजित किया गया, जिसमें विद्यालय व क्षेत्र के युवाओ ने देश भक्ति व राष्ट्र निर्माण विषय पर बढ़ चढ़कर प्रतिभाग किया। इस दौरान प्रथम स्थान पर चयनित आयुषी यादव को गोल्ड मेडल वीरेंद्र यादव द्वारा पहनाकर दिया गया। इसी प्रकार क्रमशः द्वितीय स्थान प्राप्त अंकुश व तृतीय स्थान पर दीक्षा यादव रहीं। सभी प्रतिभागियों को सम्मानित किया गया और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना किया। उक्त कार्यक्रम में विद्यालय के प्रबंधक जंग बहादुर यादव व विद्यालय के युवा शिक्षक यशवंत यादव व समस्त विद्यालय परिवार का अभूतपूर्व सहयोग रहा तथा कार्यक्रम का सफल आयोजन हुआ।

एसपी ने पट्टी, कंधई, रानीगंज में वाहन चेकिंग का किया निरीक्षण

जिले के उप निरीक्षकों का एसपी ने किया स्थानांतरण

निरक्षण करते एसपी।

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। पुलिस अधीक्षक सतपाल अंतिल के निर्देशन में जनपद में अपराध एवं अपराधियों पर प्रभावी अंकुश लगाने/कानून-व्यवस्था को सुदृढ़ करने के दृष्टिगत जनपद पुलिस द्वारा समस्त थाना क्षेत्रों में निरंतर संदिग्ध व्यक्तियों/वाहनों की चेकिंग की गई।

इसी क्रम में एसपी द्वारा जनपद के विभिन्न थाना क्षेत्रों पट्टी, कन्धई, रानीगंज आदि का भ्रमण कर स्थानीय पुलिस द्वारा की जा रही चेकिंग का निरीक्षण किया गया तथा चेकिंग बैरियर/ड्यूटी पर कार्यरत पुलिस बल को आवश्यक निर्देश दिये गये। साथ ही पुलिस अधीक्षक द्वारा स्वयं भी स्थानीय पुलिस बल के साथ पैदल गस्त करते हुए संदिग्ध व्यक्तियों/वाहनों को चेक किया गया। उधर पुलिस अधीक्षक सतपाल अंतिल द्वारा उपनिरीक्षकगणों का स्थानान्तरण किया, जिनमें उ0नि0 राज्याभिषेक मिश्रा थाना कुण्डा से व0उ0नि0 थाना कुण्डा, उ0नि0 सुनील कुमार यादव पुलिस लाइन से व0उ0नि0 थाना कोहडौर, उ0नि0 अभिमान सिंह थाना हथिगवां से थाना उदयपुर, उ0नि0 बलवन्त सिंह थाना जेठवारा से पुलिस लाइन, उ0नि0 रविन्द्र कुमार पुलिस लाइन से थाना जेठवारा, उ0नि0 पवन कुमार उमर वैश्य पुलिस लाइन से थाना कुण्डा, उ0नि0 रोहित कुमार पुलिस लाइन से थाना हथिगवां, उ0नि0 ओम प्रकाश सिंह पुलिस लाइन से थाना हथिगवां, उ0नि0 संजय कुमार सिंह पुलिस लाइन से थाना महेशगंज, उ0नि0 आलोक कुमार सिंह पुलिस लाइन से थाना मान्धात भजे गये।

हर्ष फायरिंग करने वाले युवकों को अवैध असलहे के साथ पुलिस ने दबोचा

पट्टी, प्रतापगढ़। बारात में शामिल युवकों द्वारा विदाई के दौरान हर्ष फायरिंग करने वाले युवकों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। क्षेत्र के बिजहरा गांव के निवासी सुरेंद्र कुमार सफाई कर्मी है उन्होंने अपनी पुत्री की शादी जनपद सुल्तानपुर के लंभुआ तहसील से एक गांव से तय किया था 30 नवंबर को बारात आई और विवाह संपन्न हुआ सुबह बेटी की विदाई कार्यक्रम होने लगा तो बरात में आए युवक सचिन कुमार हिमांशु सरोज तथा अनिल सरोज तमंचे से हर्ष फायरिंग करने लगे फायरिंग के दौरान वहां अफरा-तफरी फैल गई इस दौरान गांव के किसी व्यक्ति ने अपने मोबाइल से कोतवाली पुलिस को हर्ष फायरिंग की सूचना दी जानकारी पर कोतवाली के उपनिरीक्षक मोहम्मद कासिम पुलिस बल के साथ मौके पर पहुंचे ।

शारीरिक अक्षमता विकास में बाधक नहीं: प्रीती शुक्ला

दिव्यांगों को दिये गये स्वेटर, लोअर व चादर

दिव्यांगों को स्वेटर देतीं जिला कमाण्डेंट प्रीती शुक्ला

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। विश्व दिव्यांग दिवस की पूर्व संध्या पर प्रयास राजकीय अक्षम विद्यालय भंगवा चुंगी में दिव्यांगों को स्वेटर, लोअर व चादर वितरित किया गया। इस दौरान दिव्यांगों के चेहरे खिल गये। इस दौरान मुख्य अतिथि प्रीति शुक्ला जिला कमांडेंट ने कहा कि शारीरिक अक्षमता किसी के विकास में बाधक नहीं हो सकती लगन, मेहनत और कठिन परिश्रम के दम पर किसी भी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

उन्होंने कहा कि हम सब का इतिहास प्राचीन काल से ही गौरवशाली रहा है सूरदास से लेकर वर्तमान में जगद्गुरु रामभद्राचार्य, सुधा चंद्रा ने यह साबित कर दिखाया है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे इंटरनेशनल कमेटी चेयरमैन वरिष्ठ समाजसेवी रोशनलाल उमरवैश्य ने कहा कि बच्चों की प्रतिभा को देखकर कहीं से नहीं लगता कि यह हम सब से किसी मायने में कम है। प्रधानाचार्य प्रयास राजकीय अक्षम विद्यालय प्रफुल्ल कुमार गुप्त ने सभी अतिथियों का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि हमारे विद्यालय का इतिहास भी बहुत गौरवशाली रहा है।

यहां के दिव्यांग बच्चे तमाम स्थानों में जाकर उच्च पदों पर आसीन हैं। इस मौके पर जिला दिव्यांगजन अधिकारी राम प्रकाश, नारायण यादव, जयप्रकाश शुक्ला, अनिरुद्ध तिवारी, प्रधानाचार्य प्रफुल्ल कुमार गुप्ता, विवेक, शंकर लाल आदि उपस्थित रहे।

दहेज प्रताडना को लेकर चार के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज

अखंड भारत संदेश

लालगंज, प्रतापगढ़। कोतवाली पुलिस ने दहेज की मांग को लेकर विवाहिता को प्रताड़ित किये जाने व जानलेवा धमकी दिये जाने को लेकर पति समेत ससुराल के चार लोगों के खिलाफ दहेज प्रताड़ना मारपीट व धमकी का मुकदमा दर्ज किया है। प्रयागराज जिले के मऊआइमा थानान्तर्गत दुबाही गांव निवासी निजामुददीन की पुत्री सहाना बानो का विवाह 2019 मे प्रतापगढ़ जिले के लालगंज कोतवाली अन्तर्गत गाबीमहुआवन निवासी हमीदुददीन के पुत्र नावेद अंजुम के साथ हुआ। पीडित विवाहिता ने पुलिस को दी गई तहरीर मे कहा है कि विवाह के बाद से ही दहेज की मांग को लेकर उसके ससुराल के लोग उसे प्रताड़ित करते आ रहे हैं। आरोप है कि बीते दो अक्टूबर की शाम चार बजे पीड़ित विवाहित के पति नावेद अंजुम, ससुर हमीदुददीन, जेठानी जरीना पत्नी नफीस तथा जेठानी खुशबू पत्नी वसीम ने उसे दहेज की मांग को लेकर मारापीटा तथा जानलेवा धमकी देते हुए घर से निकाल दिया। घटना को लेकर पीड़ित विवाहिता ने पुलिस को तहरीर दी। लेकिन पुलिस कार्रवाई के नाम पर हीलाहवाली करती रही। इसके बाद परेशान पीडिता ने कोर्ट मे फरियाद की। कोर्ट की फटकार पर पुलिस ने पति नावेद अंजम समेत चार ससुरालीजनों के खिलाफ दहेज प्रताड़ना, मारपीट व धमकी आदि की धाराओं मे मुकदमा दर्ज किया है।

सनातन धर्म के कारण भारत दुनिया का गुरु: स्वामी रमणाचार्य

सनातन धर्म के संरक्षण हेतु संत निवास का हुआ उद्घाटन

संत निवास के उद्घाटन अवसर पर मौजूद स्वामी इंदिरा रमणाचार्य

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। सर्वोदय सद्भावना संस्थान द्वारा सेनानी ग्राम देवली के परसन पांडे का पुरवा में संस्कृत संस्कार और सनातन धर्म की संरक्षण हेतु संतों का समागम एवं संत निवास का उद्घाटन संपन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि परम पूज्य श्री श्री 1008 स्वामी इंदिरा रमणाचार्य पीठाधीश्वर जीयर स्वामी मठ जगन्नाथ पुरी द्वारा कैबिनेट मंत्री राजेंद्र प्रताप सिंह मोती सिंह की उपस्थिति में संपन्न किया।

तत्पश्चात संत समागम का सम्मेलन शुभारंभ हुआ जिसमें मुख्य अतिथि ने कहा कि संस्कृत और संस्कार एवं सनातन धर्म के कारण भारत दुनिया का गुरु माना जाता है। सनातन धर्म अआदि काल से चला आ रहा है। सत्य के मार्ग का अनुसरण एवं समस्त जीवो के परोपकार की भावना जिसके अंदर निहित होती है वही सच्चा श्री वैष्णव होता है। श्री राजेंद्र प्रताप सिंह मोती सिंह ने कहा कि संतो की शरण में जाने से सुख शांति प्राप्त होती है। आज इस संत निवास में पूरे देश के अनेकों तीर्थों के संत यहां विराजमान हैं। कार्यक्रम में आए अनेक संत महात्माओं ने अपने वचनों से सनातन धर्म के विषय में चर्चा की। कार्यक्रम के आयोजक ओमप्रकाश पांडे अनिरुद्ध रामानुज दास एवं नारायणी रामानुज दासी द्वारा संतो को अंगवस्त्रम एवं माल्यार्पण करके सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में मुख्य रूप से संतोष दुबे पूर्व सभासद अरुण मिश्रा अनिल मिश्रा ज्ञान प्रकाश शुक्ला अध्यक्ष सेंट्रल बार एसोसिएशन डब्बू सिंह आदि लोग मौजूद रहे।

भूमिधरी में अवैध कब्जे की शासन तक गूंज, महकमे मे मचा हड़कम्प

अखंड भारत संदेश

लालगंज, प्रतापगढ़। भूमिधरी मे अवैध कब्जे तथा जबरिया पेड़ो को आरोपियो द्वारा काट लिये जाने के मामले मे तहसील व पुलिस प्रशासन द्वारा कार्रवाई न होने पर पीड़ित ने शासन मे शिकायत की है। शिकायत पर प्रदेश के अपर मुख्य सचिव गृह के द्वारा जिला प्रशासन से कार्रवाई की आख्या मांगने पर गुरूवार को यहां तहसील प्रशासन मे दिन भर हडकंप दिखा। कोतवाली लालगंज के ढिगवस पूरे ठाकुरराम निवासी विजय कुमार मिश्र ने प्रदेश के अपर मुख्य सचिव गृह को शिकायती पत्र देकर कहा है कि उसकी भूमिधरी की जमीन पर विपक्षियो ने अवैध कब्जा कर रखा है। विपक्षियो ने जमीन मे लगे लाखो के कीमती सफेदा के पेड़ को काटकर भी बेंच दिया। यही नही आरोप है कि विपक्षियो के गांव के सार्वजनिक मार्ग पर भी खडण्जा उखाड़कर अतिक्रमण कर लिया है। पीड़ित ने कई बार तहसील प्रशासन को आपबीती सुनाई। इसके बावजूद स्थानीय राजस्व एवं पुलिस प्रशासन ने जांच का आश्वासन देकर मामले को टाल दिया। इससे परेशान पीड़ित ने प्रदेश के अपर मुख्य सचिव को शिकायती पत्र दिया। अपर मुख्य सचिव गृह अवनीश कुमार अवस्थी ने प्रकरण की जांच कर स्थानीय प्रशासन से दस दिनो मे आख्या तलब की है। शासन का फरमान आने पर गुरूवार को यहां राजस्व व पुलिस महकमे मे हडकंप देखा गया। एसडीएम ज्ञानेन्द्र विक्रम सिंह का कहना है कि शिकायती पत्र की जांच कराकर कार्रवाई की जाएगी।

अफसरों की मनमानी को लेकर बिफरे अधिवक्ता, धरना प्रदर्शन कर जताया आक्रोश

एसडीएम ने समस्याओं के समाधान का दिलाया भरोसा

अखंड भारत संदेश

लालगंज, प्रतापगढ़। तहसील मे प्रशासनिक कामकाज मे अफसरो की मनमानी तथा अतिक्रमण आदि को लेकर गुरूवार को भी वकीलों का पारा सातवें आसमान पर चढ़ा दिखा। वकीलों ने तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार के न्यायिक एवं प्रशासनिक कामकाज का बहिष्कार किया। वहीं एसडीएम कोर्ट के सामने दोपहर तक प्रशासन के खिलाफ जमकर नारेबाजी करते हुए धरना प्रदर्शन किया। बाद मे एसडीएम ने संयुक्त अधिवक्ता संघ के पदाधिकारियों से वार्ता कर समस्याओं के समाधान का भरोसा दिलाकर धरना समाप्त करवाया।

संयुक्त अधिवक्ता संघ के अध्यक्ष राममोहन सिंह की अगुवाई मे एसडीएम को दिये गये ज्ञापन मे वकीलों ने आरोप लगाया है कि तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार नियमित रूप से कार्यालय एवं कोर्ट मे उपलब्ध नही रहा करते। अधिवक्ताओं का आरोप है कि इन अफसरो के द्वारा कागजात दुरूस्ती तथा वादकारियों से जुडे छोटे मोटे कामकाज भी निष्पादित न करने से वादकारी परेशान होकर भटक रहे है। वहीं ज्ञापन मे कहा गया है कि तहसीलदार न्यायिक की कोर्ट मे पीठासीन अधिकारी की रिक्तता के कारण लगभग एक वर्ष से मुकदमों मे वादकारियों को तारीख तक नही मिल पा रही है। धरना प्रदर्शन का संचालन महामंत्री प्रवीण यादव व संयोजन उपाध्यक्ष संतोष पाण्डेय ने किया। सभा को संबोधित करते हुए पूर्व अध्यक्ष ज्ञानप्रकाश शुक्ल, अनिल महेश, टीपी यादव, राव वीरेन्द्र सिंह, संदीप सिंह, हरिशंकर द्विवेदी, लाल राजेन्द्र सिंह, शैलेन्द्र सिंह ने सम्बोधित किया।

चोरी करने वाले युवक को पुलिस ने दबोचा

पट्टी, प्रतापगढ़। किशुनगंज बाजार में मोबाइल की दुकान में चोरी करते समय उसकी निशानदेही पर पकड़ कर पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया उसके पास प्लास्टिक की बोरी में स्मार्टफोन बरामद किया। उसने अपना नाम राजबहादुर ग्राम असवरनपुर जनपद सुल्तानपुर बताया पुलिस उसके अन्य साथियों की गिरफ्तारी के लिए दबिश दे रही हैं पुलिस ने बरामद मोबाइल के साथ युवक को गिरफ्तार किया।

दो आरोपियो के खिलाफ धोखाधड़ी व कूटरचना की रिपोर्ट दर्ज

अखंड भारत संदेश

लालगंज, प्रतापगढ़। कोतवाली पुलिस ने अलग अलग समय पर दस्तावेजों मे कूटरचना करके भूमिधरी की जमीन का बैनामा कराए जाने को लेकर पीड़िता की तहरीर पर दो लोगों के खिलाफ केस दर्ज किया है। लालगंज कोतवाली के असैनापुर गांव निवासी माताफेर के पुत्र राधेश्याम ने पुलिस को दी गई तहरीर मे कहा है कि उसकी भूमिधरी की जमीन को गांव के रामेश्वर प्रसाद के पुत्र रामदेव ने एक अज्ञात व्यक्ति के साथ मिलकर अलग अलग समय पर दस्तावेजों मे कूटरचना किया। आरोपी ने जालसाजी कर जमीन का अपने पक्ष मे बैनामा करा लिया। उसके बाद धोखे से उस जमीन का विक्रय कर दिया। पीड़ित की तहरीर पर पुलिस ने रामदेव समेत दो लोगों के खिलाफ धोखाधड़ी समेत कई गंभीर धाराओं मे मुकदमा दर्ज किया है।

मुठभेड़ में मारे गये तौफीक की पत्नी ने सीजेएम के यहां दायर किया वाद

प्रतापगढ़। पुलिस मुठभेड़ में 16 अक्टूबर को मारे गये आरोपी तौफीक की पत्नी ने सीजेएम कोर्ट में एक वाद दाखिल कर पुलिस के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करने की मांग की है। मृतक की पत्नी आलिया खान के अधिवक्ता अभिषेक तिवारी की तरफ से बीते मंगलवार को सीजेएम न्यायालय में धारा-156 (3) के तहत रिपोर्ट दर्ज करने की मांग की गई है। बता दें कि 16 अक्टूबर को लालगंज कोतवाली के बाबू तारा गांव में पुलिस मुठभेड़ में तौफीक मारा गया था।

महिला के साथ छेडछाड व मारपीट का आरोप, दी तहरीर

अखंड भारत संदेश

लालगंज, प्रतापगढ़। घर मे घुसकर पीडित महिला के साथ छेडछाड व मारपीट की घटना को लेकर पीड़िता ने पुलिस को तहरीर दी है। हालांकि पुलिस ने अभी मामले मे केस दर्ज नही किया है। लालगंज कोतवाली के रायपुर तियांई गांव की एक महिला ने पुलिस को दी गई तहरीर मे कहा है कि बीती पचीस नवंबर को दोपहर मे वह घर पर मौजूद थी। इसी बीच शराब के नशे मे धुत होकर उसके दोनों जेठ घर मे घुस आये और उसके साथ छेडखानी करने लगे। पीड़ित महिला ने विरोध किया तो आरोपियो ने घर मे रखे कीमती सामान मे तोडफोड किया और बक्शे मे रखे चालीस हजार रुपए भी निकाल लिये। पीडित महिला के शोर मचाने पर उसके पुत्र व पुत्री पहुचंकर बीचबचाव करने लगे तो आरोपियो ने उन्हें भी जमकर मारापीटा। यही नही मजूदरी करके शाम को घर लौटे पीड़ित महिला के पति के साथ भी आरोपियो ने मारपीट किया। घटना को लेकर पीडिता ने पुलिस को तहरीर दी है। कोतवाल कमलेश पाल का कहना है कि मामले की जांच की जा रही है, जांच के बाद उचित कार्रवाई की जाएगी।

एमडीपीजी कालेज में मतदान के लिये दिलाई गई शपथ

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। एमडीपीजी कॉलेज में अपर जिलाधिकारी सुनील कुमार शुक्ल एवं प्राचार्य प्रो मनोज मिश्र ने गुरुवार को मतदाता जागरुकता के क्रम में छात्र-छात्राओं, शिक्षकों एवं कर्मचारियों को मतदान की शपथ दिलाई। इस दौरान महाविद्यालय के शिक्षक डॉ आर के दूबे, डॉ अमिता मिश्रा, डॉ शैलेश कुमार पांडे, डॉ अरुण कुमार मिश्रा, डॉ अभिषेक सिंह, विंध्याचल सिंह, डॉ डी के पाण्डेय, मोहम्मद अनीस आदि उपस्थित रहे। महाविद्यालय में आज छात्रवृत्ति स्वीकृत प्रमाण पत्र भी प्राचार्य प्रो मनोज मिश्र ने वितरित किया। इस दौरान नोडल अधिकारी डॉ पीयूष कांत शर्मा भी उपस्थित रहे।

खबर संक्षेप

धान खरीद केंद्रों में दलाल हावी

कौशांबी। धान खरीद केंद्र में किसान परेशान हैं किसानों के धान तौल में केंद्र प्रभारी तरह-तरह के बहाने बताते हैं जबकि दलालों के जरिए सरकारी खरीद में अवरोध नहीं उत्पन्न हो रही है खुलेआम कमीशन खोरी दलालों के माध्यम से हो रहे हैं ओसा मंडी में सुनील कुमार और बटुक नामक दो दलाल लंबे समय से सक्रिय हैं धान खरीद केंद्र में दोनों दलाल के माध्यम से केंद्र प्रभारी किसानों का उत्पीड़न कर रहे हैं बताया जाता है कि डेढ़ सौ रुपए कुंटल किसानों से धान में अवैध वसूली हो रही है जो किसान दलाल के माध्यम से आते हैं उनके लिए सरकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं वरना कानूनी मकड़जाल में उलझा कर किसानों का उत्पीड़न किया जा रहा है यह दोनों दलाल ओसा मंडी के लिए नए नहीं है बीते एक दशक से दोनों दलाल ओसा मंडी धान खरीद केंद्र में बिचौलिया बनकर किसानों का शोषण कर रहे हैं लेकिन एक दशक से खरीद केंद्र मे हावी इन दलालों को अधिकारी चिन्हित नहीं कर पाए हैं जिससे दलालों के केंद्र प्रभारियों से सांठगांठ से कहीं इंकार नहीं किया जा सकता इन दिनों यह दोनों दलाल ओसा मंडी के मंडी समिति के धान खरीद केंद्र में किसानों को शोषण करने में लगे हैं किसानों ने दलालों पर कार्यवाही करने की मांग डीएम से की है।

धान खरीद केंद्रों में किसान हुए परेशान तो अधिकारी होंगे दंडित : डिप्टी सीएम

सीएचसी व पीएचसी में स्वास्थ्य सुविधाओं को और अधिक बेहतर करने के डिप्टी सीएम केशव प्रसाद मौर्य ने दिए निर्देश

अखंड भारत संदेश

कौशाम्बी। प्रदेश के उप मुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य द्वारा गुरुवार को माँ शीतला देवी अतिथि गृह, सिराथू में अधिकारियों के साथ बैठक की गयी बैठक में उप मुख्यमंत्री ने धान खरीद की समीक्षा के दौरान डिप्टी आर0एम0ओ0 को निर्देशित किया कि वह सुनिश्चित करें कि धान खरीद के सम्बन्ध में किसानों को किसी भी प्रकार की कोई परेशानी न होने पाये एवं घटतौली की शिकायत न आने पाये, शिकायत पाये जाने पर सम्बन्धित के विरूद्ध कार्यवाही की जायेगी। इसके साथ ही उन्होंने धान खरीद के सम्बन्ध में दूरभाष नम्बर जारी करने के निर्देश दिये, जिससे आमजन अपनी शिकायत दर्ज करा सकें। उन्होंने कहा कि हाईब्रिड धान खरीद के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी क्रय केन्द्रों सहित अन्य स्थानों पर अंकित कराया जाए तथा विभिन्न माध्यमों द्वारा व्यापक प्रचार-प्रसार सुनिश्चित किया जाय। बैठक में डिप्टी आर0एम0ओ0 ने बताया कि जनपद में राईस मीलें कम हैं, जिस पर उप मुख्यमंत्री ने जनपद प्रयागराज एवं फतेहपुर के राईस मीलरों से वार्ता कर आवश्यक कार्यवाही करने के निर्देश दिये उप मुख्यमंत्री ने गौआश्रय स्थलों की समीक्षा के दौरान कहा कि आवारा घूम रहे गोवंशों को आश्रय स्थलों में रखा जाए तथा यह सुनिश्चित किया जाय किसी भी गोवंश के आवारा घूमने की शिकायत न आने पाये। उन्होंने गौआश्रय स्थलों में सभी व्यवस्थाओं के साथ ही गोंवशों को ठण्ड से बचाव हेतु सभी आवश्यक व्यवस्थायें सुनिश्चित करने के निर्देश दिये। उन्होंने कहा कि चिन्हित अस्थायी गोआश्रय स्थलों के सम्बन्ध में तेजी से आवश्यक कार्यवाही की जाय एवं निमार्णाधीन गौशालाओं को शीघ्र पूर्ण कराया जाय।

उप मुख्यमंत्री द्वारा जनपद में स्वास्थ्य व्यवस्थाओं एवं कोविड-19 टीकाकरण की प्रगति की जानकारी प्राप्त करने पर मुख्य चिकित्साधिकारी ने बताया कि कोविड-19 टीकाकरण में जनपद प्रदेश में 6वें स्थान पर है तथा कोविड-19 टीकाकरण की प्रथम डोज 84 प्रतिशत एवं द्वितीय डोज 30 प्रतिशत दी जा चुकी है। उप मुख्यमंत्री ने कोविड टीकाकरण में तेजी से और अधिक प्रगति लाने तथा कोविड-19 की नये वैरियण्ट के दृष्टिगत स्वास्थ्य की बेहतर व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु सभी आवश्यक तैयारियाँ पूर्ण करने एवं सी0एच0सी0 व पी0एच0सी0 में स्वास्थ्य सुविधाओं को और अधिक बेहतर करने तथा ऑक्सीजन प्लाण्टों को क्रियाशील करने के निर्देश दिये।उप मुख्यमंत्री ने कहा कि जनपद में नगर पालिकाओं के विस्तार में जो गांव शामिल हुए हैं, उन सभी क्षेत्रों में कैम्प लगाकर पात्र लोगों को आवास आदि कल्याणकारी योजनाओं से लाभान्वित किया जाय। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण एवं शहरी के लिए चिन्हित सभी पात्र व्यक्तियों को शीघ्र लाभान्वित किये जाने हेतु आवश्यक कार्यवाही की जाय। उन्होंने कृषक दुर्घटना के लाभार्थियों को शीघ्र सहायता राशि दिये जाने के निर्देश दिये। उप मुख्यमंत्री ने कहा कि जहॉ-जहॉ नई सड़कें बननी हैं, उन सभी के प्रस्ताव बनाकर उपलब्ध कराया जाए तथा जो भी परियोजनायें पूर्ण हो गयी हैं, उनका लोकार्पण तथा स्वीकृत परियोजनाओं का शिलान्यास मा0 जनप्रतिनिधियों से कराया जाय। उन्होंने सांसद निधि एवं विधायक निधि के अन्तर्गत कराये जा रहे कार्यो की प्रगति की भी समीक्षा की। उन्होंने जनपद में डी0ए0पी0 की उपलब्धता एवं बिजली की आपूर्ति आदि की भी विस्तृत जानकारी प्राप्त की बैठक में जिलापूर्ति अधिकरी ने बताया कि सभी कार्ड धारकों को इस माह से राशन के साथ ही 01 लीटर खाद्य तेल, 01 किलो नमक एवं 01 किलो दाल दिया जायेगा, जिस पर उपमुख्यमंत्री ने कहा कि कोटेदारों की बैठक कर कार्यक्रम आयोजित कराकर वितरण कराया जाय। इसके साथ ही उन्होंने निर्देश दिये कि सभी पात्र व्यक्तियों का राशन कार्ड बनाया जाय, इस सम्बन्ध में कोई शिकायत न आने पाये। इस अवसर पर अध्यक्ष जिला पंचायत श्रीमती कल्पना सोनकर सांसद विनोद सोनकर विधायक शीतला प्रसाद भाजपा जिलाध्यक्ष श्रीमती अनीता त्रिपाठी सहित जिलाधिकारी सुजीत कुमार एवं पुलिस अधीक्षक राधेश्याम विश्वकर्मा सहित अन्य सम्बन्धित अधिकारी गण उपस्थित रहे।

अधिकारियों को संबोधित करते डिप्टी सीएम केशव प्रसाद मौर्य साथ में मौजूद सांसद विधायक और जिला अध्यक्ष

बैठक में उपस्थित विभिन्न विभाग के अधिकारी

विभिन्न मांगों को लेकर स्वास्थ्य संविदा कर्मियों ने सीएम को भेजा ज्ञापन

अखंड भारत संदेश

समस्याओं का निस्तारण नहीं हुआ तो एंबुलेंस कर्मचारियों को बड़ा आंदोलन करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा

कौशांबी। स्वास्थ्य विभाग के एंबुलेंस में लगे संविदा कर्मियों का लगातार शोषण हो रहा है संविदा कर्मियों की नियुक्ति करने वाली निजी संस्था द्वारा संविदा कर्मियों को अधूरा वेतन दिया जा रहा है उनसे काम भी अधिक लिया जा रहा है इतना ही नहीं वेतन कटौती के साथ-साथ अन्य तमाम तरह से संविदा कर्मियों का उत्पीड़न संस्था के जिम्मेदारों द्वारा किया जा रहा है स्वास्थ्य संविदा कर्मियों ने बताया कि कई कई महीने का वेतन नहीं दिया जाता है और शिकायत करने पर सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है निजी संस्था के आतंक से त्रस्त स्वास्थ्य संविदा कर्मियों ने धरना प्रदर्शन कर जिलाधिकारी के माध्यम से मुख्यमंत्री को ज्ञापन भेजते हुए कहा है कि 9000 कर्मचारियों को अवैध ढंग से सेवाएं समाप्त करने के मामले में उन्हें बहाल किया जाए

कलेक्ट्रेट में ज्ञापन सौंपने पहुंचे स्वास्थ्य संविदा कर्मी

बोनस देने के नियम होने के बाद कंपनी द्वारा बोनस का भुगतान नहीं किया गया है बोनस का भुगतान कराए जाने सहित विभिन्न मांगों को लेकर स्वास्थ्य संविदा कर्मियों ने ज्ञापन सौंपते हुए कहा है कि यदि समस्याओं पर सहानुभूति पूर्वक यथाशीघ्र विचार करते हुए समस्याओं का निस्तारण नहीं हुआ तो मजबूरन एंबुलेंस कर्मचारियों को बड़ा आंदोलन करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा ज्ञापन सौंपने वालों में सत्या गुप्ता अरविंद मिश्रा बांके लाल गुप्ता सहित तमाम लोग शामिल रहे।

साइबर अपराध के बारे में किया गया जागरूक

कौशाम्बी। पुलिस महानिदेशक उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा बढ़ते साइबर अपराध के दृष्टिगत सार्वजनिक स्थानों स्कूल कॉलेजो व अन्य सार्वजनिक स्थानों में साइबर अपराध से जागरूक करने के कार्यक्रम का शुभ आरम्भ किया गया जिसमे पुलिस अधीक्षक के निर्देशन में व अपर पुलिस अधीक्षक के मार्गदर्शन मे मंझनपुर ब्लॉक के ग्राम प्रधानों के साथ गोष्ठी कर साइबर जागरुकता दिवस में साइबर क्राइम सेल व प्रभारी निरीक्षक मंझनपुर द्वारा साइबर अपराध जैसे एटीएम कार्ड स्कीमिंग यूपीआई फ्रॉड फेसबुक फ्रॉड कौन बनेगा करोडपति केवाईसी फ्रॉड व अन्य विभिन्न प्रकार के साइबर अपराध से सम्बन्धित अपराध के बारे में बताया व जागरूक किया गया जिससे आमजनमानस साइबर फ्रॉड से बच सके जिसमे ब्लॉक प्रमुख प्रतिनिधि हुबलाल दिवाकर सहित अन्य कई ग्राम सभा के प्रधान आम जनमानस उपस्थित रहे उक्त प्रशिक्षण के जागरुकता से सभी के लिये भावी भविष्य में हितकर व लाभदायक होगा।

विधवा महिला और उसकी बेटी को दबंगों ने पीटा

अखंड भारत संदेश

विधवा के दरवाजे पर मलमूत्र कीचड़ गंदगी फेंक कर विधवा को गांव छोड़ने के लिए दबंग कर रहे हैं विवश

बेरूवा कौशांबी। चरवा थाना क्षेत्र के गोगाही गांव की एक विधवा महिला और उसकी बेटी को गांव के दबंगों ने बेरहमी से पीट दिया है जिससे महिला और उसकी बेटी को चोटे आई है मामले की तहरीर चरवा थाने की पुलिस को दी गई है बताया जाता है कि विधवा महिला को गांव छोड़ने पर दबंग विवश कर रहे हैं इसीलिए आए दिन तरह-तरह से विधवा महिला के साथ दबंग अत्याचार कर रहे हैं। घटनाक्रम में बताया जाता है कि गोगाही गांव निवासी मृतक भंवर सिंह की विधवा पत्नी आशा देवी अपनी बेटी शालनी के साथ घर पर रहती है पड़ोसी फूल सिंह की नीयत ठीक नहीं है वह विधवा को आए दिन परेशान करता है उसके दरवाजे पर मलमूत्र कीचड़ गंदगी फेंक दी जाती है जिससे विधवा परेशान होती है विधवा को गांव से भगा कर उसका घर कब्जा करने का प्रयास दबंग कर रहा है इसी बात को लेकर 2 दिसंबर को विधवा ने फूल सिंह से उलाहना दिया जिस पर फूल सिंह और उसकी पत्नी ने मिलकर विधवा आशा देवी और उसकी बेटी शालिनी को बेरहमी से पीट दिया है जिससे दोनों को चोटें आई हैं इसके पूर्व भी फूल सिंह विधवा महिला पर जुल्म ज्यादती अत्याचार कर चुका है लेकिन पुलिस महकमे से विधवा को न्याय नहीं मिल रहा है।

न्यूज झरोखा

चौथे दिन के खेल में सेमीफाइनल में पहुंची क्रिकेट प्रतियोगिता

कौशाम्बी। कौशाम्बी विकास परिषद के तत्वावधान में 6 दिवसीय संसदीय स्तरीय खेल प्रतियोगिता सांसद खेल महोत्सव सांसद ट्रॉफी टेवा स्थिति स्पोर्ट्स स्टेडियम में क्रिकेट खेल प्रतियोगिता में चौथे दिन मंझनपुर ब्लाक बनाम सरसवां ब्लाक के बीच सेमीफाइनल खेला गया। जिसमें मंझनपुर की टीम टास जीतकर पहले बल्लेबाजी करते हुये निर्धारित 6 ओवर में पॉच विकेट के नुकसान में 83 रन बनाने का लक्ष्य सरसवां टीम को दिया। जवाब में सरसवां टीम के कप्तान शुभम के नेतृत्व में निर्धारित 6 ओवर में 4 विकेट खोकर 2 रन से पराजित हो गयी। अब फाइनल मैच 4 दिसम्बर को खेला जायेगा। इस मौके पर डा0 अरूण केशरवानी, आशीष केशरवानी, दिनेश सोनकर, भूपेन्द्र सिंह, बिओं पीआरडी, स्वाती पाण्डेय, सुधीर कुमार जिला समाज कल्याण, अधिकारी जिला क्रीड़ा अधिकारी रूस्तम खान आदि लोग उपास्थित रहें। उक्त जानकारी सांसद मीडिया प्रभारी राजेन्द्र पाण्डेय ने दी।

मुकदमे से नाम हटाने को चौकी इंचार्ज ने मांगा दस हजार

कौशांबी। मंझनपुर कोतवाली क्षेत्र के दीवार कोतारी चौकी इंचार्ज पर मुकदमे से नाम हटाने के नाम पर दस हजार रुपए की रकम मांगने का आरोप है मामले में बताया जाता है कि रामेश्वर प्रसाद पाल निवासी गौसपुर टिकरी की बेटी की शादी नानन्हुआ का पुरा में हुई थी जहां विवाहिता बेटी के साथ ससुराली जन जुल्म ज्यादती अत्याचार कर रहे हैं ससुरालियों ने रामेश्वर की बेटी को बेरहमी से पीट दिया था जिस पर बेटी ने ससुरालियों के जुल्म ज्यादती अत्याचार की शिकायत अपने पिता रामेश्वर से की थी जिस पर 16 अक्टूबर को रामेश्वर बेटी के ससुराल नानन्हुआ का पूरा पहुंचे जहां इसी बात को लेकर रामेश्वर का रिश्तेदारों में वाद विवाद हुआ बेटी ने ससुरालियों के खिलाफ पहले से तहरीर दे रखी थी लेकिन बेटी के ऊपर ससुराली जनों द्वारा जुल्म ज्यादती अत्याचार के मामले में पुलिस को मुकदमा लिखने की फुर्सत नहीं मिल सकी लेकिन बेटी पर हो रहे अत्याचार के मामले पर मददगार बनकर पहुंचे रामेश्वर उनकी बेटी और उनके बेटों पर 18 अक्टूबर को प्राणघातक हमले का मुकदमा मंझनपुर पुलिस ने लिख दिया मामले में मेडिकल ने पुलिस के मुकदमे की धज्जियां उड़ा कर रख दी मेडिकल में गंभीर चोट की पुष्टि नहीं की है लेकिन फिर भी एक चर्चित दलाल के दबाव में चौकी इंचार्ज ने पुलिस कानून की धज्जियां उड़ा दी आला अधिकारियों की वर्दी कलंकित करते हुए चौकी इंचार्ज ने विवाहिता बेटी के निर्दोष भाई को 18 अक्टूबर को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया मामले में अदालत ने युवक की जमानत दे दी है इसी मामले में चौकी इंचार्ज के पास रामेश्वर गए थे और उन्हें मेडिकल जांच के अभिलेख दिए पुलिस ने रामेश्वर के साथ गाली गलौज कर उन्हें चौकी में बैठा लिया काफी देर तक विनती करने के बाद चौकी इंचार्ज ने इस शर्त पर रामेश्वर को छोड़ा है कि दस हजार रुपए घर से लेकर आओ तुम्हारा नाम मुकदमे से हटा देंगे दस हजार रुपए की रकम देने का वादा कर रामेश्वर चौकी इंचार्ज के जान छुटा कर घर पहुंचे हैं और आप बीती बता रहे हैं अब सवाल उठता है कि जब मेडिकल ने गंभीर चोट की पुष्टि नहीं की है तो चौकी इंचार्ज ने कैसे रामेश्वर के बेटे को गंभीर धाराओं में जेल भेजा है यह बड़ी जांच का विषय है चौकी इंचार्ज के दलाल के दबाव में काम करने के मामले में पुलिस अधिकारी ने जांच कराई तो चौकी इंचार्ज पर कठोर कार्रवाई हो सकती है।

जस्ट डायल वेब सीरीज की चल रही शूटिंग

बेनीराम कटरा कौशाम्बी। जिले में इन दिनों जस्ट डायल द क्राइम बेव सीरीज की शूटिंग चल रही है शूटिंग के दौरान प्रोड्यूसर राज आतंकी ने कहा कि कौशांबी के कलाकारों को भी मौका दिया जाएगा और जल्द ही आम जनता के बीच कार्यक्रम नजर आएगा एप्पल सिनेवर्ल्ड बैनर तले जस्ट डायल द क्राइम वेब सीरीज की शूटिंग चल रही है वेब सीरीज की शूटिंग इन दिनों हो रही है उन्होंने कौशांबी के कलाकारों को भी मौका दिया जिसमें कौशांबी के एक्टर रूपेश विश्वकर्मा राजू तिवारी डायरेक्टर सलीम साजन एवं पीहू प्याली, आशिमा, रिया यादव, विजय शर्मा, मोतीलाल शर्मा, राज आतंकी ने मुख्य किरदार निभाया है।

अधेड़ का नहीं लगा सुराग

कौशांबी। कोखराज थाना क्षेत्र के मूरतगंज पुलिस चौकी अंतर्गत बहन पुरवा गांव निवासी राम भवन उम्र लगभग 50 वर्ष पुत्र जगरूप 27 नवंबर को रहस्यमय परिस्थितियों में लापता हो गए हैं 6 दिन बीत जाने के बाद भी राम भवन का सुराग नहीं लग सका है परिजनों के मुताबिक मामले की सूचना स्थानीय पुलिस चौकी को दी गई है लेकिन उसके बाद भी राम भवन का कहीं सुराग नहीं लग रहा है परिजनों ने चौकी पुलिस पर लापरवाही का आरोप लगाते हुए अनहोनी की आशंका व्यक्त की है।

जमीन पर कब्जा करने वालों ने वृद्ध पर किया प्राणघातक हमला

70 साल पुराने ठंडा हो चुके मामले में चौकी पुलिस ने 25 हजार दबंगों से लेकर अपराध करने की दे दी छूट

अखंड भारत संदेश

कौशांबी। पिपरी थाना क्षेत्र में एक वृद्ध पर दबंगों ने लाठी डंडा कुल्हाड़ी से प्राणघातक हमला किया है घायल को इलाज के लिए अस्पताल में भर्ती कराया है मामले की शिकायत लेकर वृद्ध परिजनों समेत एसपी कार्यालय पहुंचा है और मुकदमा दर्ज कराने की फरियाद की है स्थानीय पुलिस चौकी चायल पर हमलावरों को संरक्षण देकर हमला कराए जाने का आरोप बृद्ध ने लगाया है। पिपरी थाना क्षेत्र के विक्रमाजीत पुत्र रामखेलावन गिरिया खालसा की गांव के दबंग हीरालाल वा दामोदर पुत्र गण गोरे लाल पंडित आदि लोग जबरिया जमीन पर कब्जा कर रहे हैं इस मामले की शिकायत विक्रमाजीत ने 01 दिसंबर को स्थानीय थाना पिपरी और पुलिस चौकी चायल से कर जमीन पर कब्जा रोकने की मांग की लेकिन कब्जा तो नहीं रुक सका लेकिन अवैध कब्जा कर रहे दबंगों ने 01 दिसम्बर को विक्रमाजीत के बेटे मिथुन को पीट दिया इस बात की शिकायत लेकर फिर विक्रमाजीत स्थानीय पुलिस चौकी पहुंचा जिस पर पुलिस ने तहरीर तो ले लिया और दबंगों को चौकी बुला लिया आरोप है कि चौकी पुलिस ने 25 हजार दबंगों से लेकर उन्हें अपराध करने की छूट दे दी जिस पर दबंग वापस घर पहुंचे और 2 दिसंबर की सुबह विक्रमाजीत पर प्राणघातक हमला कर दिया लाठी डंडा कुल्हाड़ी से लेश आधा दर्जन लोगों ने गुरुवार को विक्रमाजीत पर जमकर हमला किया जिससे विक्रमाजीत लहूलुहान होकर गिर पड़ा आनन-फानन में परिजन उसे अस्पताल लेकर भागे जहां उसका इलाज चल रहा है मामले की सूचना लेकर विक्रमाजीत परिजनों के साथ पुलिस अधीक्षक कार्यालय पहुंचा और शिकायती पत्र देकर चौकी पुलिस पर गंभीर आरोप लगाते हुए आरोपियों पर मुकदमा दर्ज कराए जाने की मांग की है। बताते चलें कि विक्रमाजीत और दूसरे पक्ष के गोरेलाल आदि का 17 साल पुराना मामला है जमीन खरीदने के नाम पर गोरेलाल ने कुछ रुपया विक्रमाजीत को दे दिया था लेकिन गोरेलाल के पास रुपए नहीं पूरा हो सका जिससे उसने जमीन लेने से इनकार कर दिया 17 साल बाद जमीन की कीमत बेतहाशा बढ़ गई और जमीन की कीमत बढ़ जाने के बाद स्थानीय पुलिस चौकी ने जमीन पर कब्जा कराने का ठेका ले लिया पुलिस से ठेका तय होने के बाद 17 साल पुराने मामले में चौकी इंचार्ज ने आग में घी डाल दिया जिसका नतीजा यह रहा कि दबंगों ने वृद्ध पर प्राणघातक हमला कर दिया और अवैध कब्जा करने वाले लोग जबरिया जमीन पर कब्जा कर रहे हैं आरोप है कि स्थानीय पुलिस संरक्षण दे रही है जिससे प्राणघातक हमला किया गया है आरोपियों पर आरोप है कि एक भतीजे की हत्या कर चुके हैं और भाई पर इस कदर दबाव बनाया कि वह भयवश गांव छोड़ कर भाग जाने को विवश हो गया खबर लिखे जाने तक आरोपियों पर मुकदमा नहीं दर्ज हुआ है।

हमले में घायल बृद्ध

दलित की जमीन पर दबंग कर रहा कब्जा

कौशाम्बी। चरवा थाना क्षेत्र के हौसी में दलित की जमीन पर जबरिया दबंग फूलचंद यादव कब्जा कर रहा है 3 फिट दीवार गिराकर दलित की जमीन पर कब्जा कर लिया गया 10 दिन पहले दबंग ने गोपी सरोज के साथ किया था झगड़ा, 100 नंबर पुलिस ने जाकर काम को रुकवाया था आज गुरुवार को दबंग पुनः निर्माण कर रहा है।

हमले में दो लोग गंभीर घायल

कौशांबी। कोखराज थाना क्षेत्र के बालक मऊ गांव में दो दर्जन दबंगो ने घर पर चढ़कर कुल्हाड़ी फरसा से हमला कर दिया है इस हमले में 2 लोग गम्भीर घायल हो गए हैं घायलों को इलाज के लिए अस्पताल भेजा गया है सूचना पर पहुंची पुलिस ने दो गंभीर लोगो को एंबुलेंस से जिला अस्पताल में भर्ती कराया है पुलिस ने 4 लोगों को उठाया है आज गुरुवार को सुबह फिर कई लोगों ने मिलकर एक महिला को पीट कर घायल किया है।

कोरोना के नए वैरिएंट से जिला प्रशासन व स्वास्थ्य विभाग सतर्क

अखंड भारत संदेश

कोरोना से बचाव के लिए दोनों डोज अवश्य लगवाएँ बाहर जाने पर मास्क जरूर लगाएँ, हाथों को करते रहें सैनिटाइज : सीएमओ

कौशाम्बी। कोरोना के नए वैरिएंट को देखते हुये स्वास्थ्य विभाग ने बचाव की प्रक्रिया तेज कर दी है। स्वास्थ्य विभाग की टीम पूरी तरह से अलर्ट मोड पर है। मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ के.सी राय ने बताया कि विदेशों से खासकर दक्षिण अफ्रीका, बोटस्वाना, हांगकांग आस्ट्रेलिया, जर्मनी, ब्रिटेन, नीदरलैंड में कोरोना का नया वैरिएंट देखने को मिला है। इससे जिला प्रशासन व स्वास्थ्य विभाग पूरी तरह से सतर्क हो गया है। उन्होने कहा कि शासन से प्राप्त निदेशानुसार जनपद में फोकस सैंपलिंग का कार्य शुरू किया गया हैं। मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने जनपदवासियों से अपील की है कि किसी भी प्रकार के वैरिएंट से घबराने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि हमें और अधिक सतर्क व सावधान रहने की आवश्यकता है। घर से बाहर निकलने पर मास्क आवश्यक रूप से लगाएँ। समय-समय पर हाथों को साबुन पानी एवं सैनिटाइज करते रहें। उन्होने कहा कि 18 वर्ष से ऊपर के सभी नागरिक कोरोना से बचाव के लिए दोनों टीके निश्चित रूप से लगवाएँ। जिन्होने पहली डोज लगवा ली है वह निर्धारित समय दूसरी डोज अवश्य लगाएँ। कोरोना से बचाव के लिए टीकाकरण ही सबसे प्रभावी माना जा रहा है। जिला सर्विलांस अधिकारी डॉ हिन्द प्रकाश मणि ने बताया कि कोरोना का नया वेरिएंट तेजी से फैलने वाला है। बहुत ही कम समय में कई देशों में यह फैल चुका है। इससे बचाव के लिए लोगों को अभी से अलर्ट रहना होगा। लोग कोविड नियमों का पालन करते रहें। बिना वजह भीड़ वाले इलाकों में न जाएं। सर्जिकल मास्क, एन.95 मास्क, या फिर तीन लेयर वाला मास्क जरुर लगायें , साफ-सफाई का विशेष ख्याल रखें। यादि किसी के परिवार, आस पड़ोस में कोई देश-विदेश से आता है तो इसकी सूचना तत्काल जनपद के इंटीग्रेटेड कोविड कमांड सेंटर को अवश्य कर दें। सर्विलान्स अधिकारी डॉ. यश अग्रवाल ने बताया कि जनपद में बुधवार से फोकस सैंपलिंग का कार्य शुरू किया गया हैं । पहले तीन दिनों के दौरान उच्च शिक्षा के सभी संस्थानों जैसे पॉलिटेक्निक संस्थानों/ आईटीआई, स्नातकोत्तर विद्यालयों और संबद्ध कॉलेजों को कवर किया जाएगा। इन संस्थानों के छात्रावासों में कॉलेज स्टाफ, हॉस्टल स्टाफ, छात्रों और सभी छात्रों का भी परीक्षण किया जाएगा। इसके बाद अगले तीन दिनों में सरकारी और निजी अस्पतालों तथा चिकित्सा शिक्षा संस्थानों में स्वास्थ्यकर्मियों की सैंपलिंग की जाएगी। स्वास्थ्यकर्मियों में चिकित्सा शिक्षा संस्थानों के संकाय के सदस्य, रेजिडेंट डॉक्टर और छात्र-छात्राएँ भी शामिल होंगे। उन्होंने बताया कि शासन की तरफ से विभाग को विदेश यात्रा से आये यात्रियों की सूची लगातार प्राप्त हो रही हैं और उसके आधार पर यात्रियों की जाँच की की जा रही हैं` उन्होंने कहा कि विदेश से लौटे लोगों का एयरपोर्ट पर ही कोरोना टीकाकरण सर्टिफिकेट देखा जाता हैं साथ ही वापसी आने वालो का 72 घंटे के अन्दर आर.टी.पी.सी.आर की जाँच रिपोर्ट देखी जाती हैं एवं (एट रिस्क कंट्री) कंट्री से आये यात्रियों का पुनः आर.टी.पी.सी.आर करने के बाद ही उन्हें घर जाने के लिए कहा जाता हैं साथ ही उन्हें सात दिन के लिए होम क्वारंटाइन सेल्फ हेल्थ मोनेट्रिंगह्व के लिए कहा जाता हैं यदि उन्हें किसी प्रकार की कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या हो तो वो तुरंत पास के स्वास्थ्य केंद्र पर संपर्क करने की सलाह दी जाती हैं । डॉ. यश ने बताया की टीकाकरण करने के लिए उसी गावं-शहर या प्रदेश में होना आवश्यक नहीं हैं` आप अपने रजिस्टर्ड मोबाइल नंबर से देश भर में किसी भी जगह टीकाकरण करा सकते हैं ` यदि आप काम की वजह से देर शाम को खली होते हैं तो उसके लिए भी विभाग द्वारा सुबह 9 से रात्रि 8 बजे तक मंझनपुर में कोविड टीकाकरण करा सकते हैं 18 वर्ष या उससे ऊपर के सभी लोगों का कोरोना टीकाकरण को-वैक्सीन का दूसरा डोज 28 दिन के बाद एवं कोविडशील्ड का दूसरा डोज 84 दिन बाद अवश्य लगवाएं अनदेखा न करें इन लक्षणों को हल्का बुखार खासी, साँस फूलना, जुकाम, हाथ पैर में दर्द, सिर दर्द, मिचली आना, पेट दर्द एवं दस्त आदि लक्षण शामिल हैं।

कड़ा विकासखंड में उद्घाटन का पत्थर लगाकर लूटा जा रहा सरकारी खजाना

अखंड भारत संदेश

कमीशन खोरी में लिप्त लोगो को मुख्य विकास अधिकारी जिला पंचायत राज अधिकारी और खंड विकास अधिकारी ने दिया मौन स्वीकृति

कौशांबी। विकास योजनाओं के नाम पर सरकारी खजाने में लूट मची है योजना के संचालन की आड़ में जिम्मेदार बेखौफ तरीके से सरकारी खजाने को लूट रहे हैं खजाना लूटने के मामले में कमीशन खोरी के चलते मुख्य विकास अधिकारी जिला पंचायत राज अधिकारी और खंड विकास अधिकारी मूकदर्शक बने हैं जिससे सरकारी खजाना बेखौफ लूटा जा रहा है लेकिन इन अधिकारियों पर आला अधिकारी भी कार्यवाही नहीं कर रहे हैं जिससे विकास योजनाओं का सरकारी खजाना सुरक्षित नहीं रह गया है अवैध तरीके से विकास योजनाओं के नाम पर सरकारी खजाना से रकम निकालने के मामले में जब कभी मुख्य विकास अधिकारी से चर्चा होती है तो वह फरियादी का इंतजार करते हैं मुख्य विकास अधिकारी शिकायती पत्र का इंतजार करते हैं और जब शिकायती पत्र उनको मिलेगा तो वह जांच कराएंगे जांच के दौरान लीपापोती होगी और आरोपी बचाए जाएंगे इस तर्ज पर कौशांबी जिले के विकास योजनाओं का संचालन चल रहा है योगी सरकार में कौशांबी जिले में विकास के नाम पर मुख्य विकास अधिकारी के संरक्षण में बेखौफ तरीके से कमीशन खोरी हो रही है जिससे पूरी योजनाएं चौपट हो चुकी हैं विकास के नाम पर कहीं योजनाओं का संचालन नहीं हो रहा है ताजा मामला कड़ा विकासखंड के भरहड़ी गांव का है जहां तालाब कि खुदाई के नाम पर एक लाख रुपये से अधिक की रकम सरकारी खजाने से निकाल ली गई है इस तालाब में एक दिन भी कार्य नहीं हुआ है केवल मौके पर कार्य कराए जाने का पत्थर लगाया गया है मामले की शिकायत ग्रामीण कई बार कर चुके हैं लेकिन फिर भी मुख्य विकास अधिकारी खजाना लूटने वालों पर कार्यवाही नहीं कर सकते हैं आखिर कैसे योगी सरकार का खजाना सुरक्षित रहेगा जब विकास भवन के अधिकारी कमीशन खोरी में लिप्त हैं कमीशन खोर अधिकारियों के कारनामों को यदि योगी सरकार ने संज्ञान लिया तो इन कमीशन खोर अधिकारियों का निलंबित होना और जेल पहुंच जाना बड़ी बात नहीं होगी जिले के लोगों ने योगी सरकार का ध्यान आकृष्ट कराते हुए कमीशन खोर अधिकारियों के कारनामों की उच्च स्तरीय जांच कराते हुए इन पर कठोर कार्रवाई किए जाने की मांग की है।

तालाब में लगाया गया बोर्ड का दृश्य

सम्पादकीय

सरकार अनजान, जनता परेशान

तीन कृषि कानूनों की वापसी का विधेयक संसद में पारित करवा कर केंद्र सरकार ने यह मान लिया था कि अब एक साल से आंदोलनरत किसान अपने घरों को लौट जाएंगे। लेकिन कानून वापसी के बावजूद किसानों की घर वापसी नहीं हुई, क्योंकि किसान एमएसपी पर गारंटी समेत कुछ और मांगें सरकार से पूरी करवाना चाहते हैं। इनमें आंदोलन के दौरान शहीद हुए किसानों को मुआवजा और उनकी याद में स्मारक बनाना, जिन किसानों पर आंदोलन के दौरान मुकदमे दर्ज हुए, उन्हें वापस लेने की मांगें भी शामिल हैं। लोकसभा में कुछ सांसदों ने आंदोलन के दौरान मारे गए किसानों का डेटा सरकार से जानना चाहा, साथ ही ये पूछा कि क्या सरकार का उक्त आंदोलन के दौरान मारे गए किसानों के परिजनों को वित्तीय सहायता प्रदान करने का विचार है। इस पर केंद्रीय कृषि मंत्री नरेंद्र सिंह तोमर ने बुधवार को संसद में बताया है कि सरकार के पास दिल्ली की सीमाओं पर कृषि कानूनों के खिलाफ प्रदर्शन के दौरान मरने वाले किसानों का कोई रिकॉर्ड नहीं है। विपक्ष की ओर से मृतक किसानों के परिवारों को आर्थिक मुआवजा दिए जाने के सवाल पर केंद्रीय मंत्री ने कहा कि चूंकि सरकार के पास किसानों की मौत का कोई रिकॉर्ड नहीं है, ऐसे में आर्थिक सहायता देने का सवाल ही नहीं उठता। मानवीय स्वभाव है कि जब आप किसी के बारे में फिक्रमंद होते हैं, किसी का भला चाहते हैं तो उसका सुख, उसकी खुशी आपकी प्राथमिकता होती है। आप ये जानने की कोशिश करते हैं कि उसके जीवन में कोई मुश्किल तो नहीं है, वो अगर किसी तकलीफ से गुजर रहा है, तो उस तकलीफ को कैसे दूर किया जा सकता है, इस बारे में विचार किया जाता है। न कि ये कहा जाता है कि मैं तुम्हारा हितैषी तो हूं, लेकिन मुझे पता ही नहीं है कि तुमने कौन सी तकलीफें उठाई हैं, इसलिए मैं उन तकलीफों के लिए कुछ नहीं कर सकता। इस वक्त मोदी सरकार का किसानों के लिए रवैया कुछ इसी तरह का है।

कृषि मंत्री ने कितनी आसानी से संसद में यह जवाब दे दिया कि सरकार के पास किसानों की मौत का कोई रिकार्ड नहीं है। यानी एक साल से अधिक दिल्ली की सीमाओं पर बैठे किसान किस हाल में आंदोलन कर रहे थे। इस दौरान उनको किन तकलीफों से गुजरना पड़ा, इस बारे में सरकार को कुछ पता ही नहीं है। क्या सरकार का सूचनातंत्र इतना कमजोर है कि सरकार को राजधानी की सीमा पर चल रहे आंदोलन की भी पूरी जानकारी नहीं मिल सकी। इससे पहले कोरोना काल में हुई मौतों के बारे में भी सरकार का यही अनजान रहने वाला चेहरा सामने आया था। चीन ने भारत की सीमा पर कहां तक अतिक्रमण किया इस बारे में भी सरकार ने चुप्पी साध रखी थी। पेगासस जासूसी कांड पर भी सरकार कुछ नहीं कहना चाहती। आखिर देश में घट रही हर वो बात, जिस पर जनता परेशान है, उससे सरकार इतनी अनजान क्यों है। खैर, कृषि मंत्री का जवाब आधिकारिक तौर पर संसद में दर्ज हो गया है, तो मृतक किसानों के परिजनों को मुआवजा भी नहीं मिलेगा, ये अभी तय हो गया है। अब आगे इस मामले को अदालत में ले जाया जाए, तो बात अलग है। जब किसानों की मौत के बारे में सरकार के पास कोई जानकारी ही नहीं है, तो ये बात भी तय है कि कोई स्मारक भी शहीद किसानों की याद में सरकार की ओर से नहीं बनेगा। वैसे भी सरकार यदि स्मारक और मुआवजे की बात मान लेगी तो यह उसकी विफलता को ही साबित करेगी। गलतियां इंसानों से ही होती हैं, इसलिए सरकार का भी कोई गलती करना जुर्म नहीं है। मगर उस गलती को न मानना, अपनी विफलता को जुमलों और वादों के बोझ में दबा देना, ये गलत है। मोदी सरकार ने तो कृषि कानूनों की वापसी करते हुए भी यह नहीं माना कि इन कानूनों को पारित कर उसने कोई गलत काम किया है। सरकार की नजर में कानून सही हैं, उनका विरोध गलत है। लेकिन फिर भी कानून वापसी हुई तो यह उम्मीद बंधने लगी कि अब बाकी मांगें भी सरकार मान लेगी। अभी सरकार ने एमएसपी के लिए भी किसान संगठनों से पांच नेताओं के नाम मांगे हैं। आंदोलनकारी किसानों में से बहुत से लोग इसे भी बड़ी जीत की तरह देख रहे हैं। अब किसान संगठनों के बीच इस बात को लेकर विमर्श चल रहा है कि आंदोलन जारी रखा जाए या खत्म कर घर लौटा जाए। एक साल से अपने घरों और खेतों से दूर रहकर आंदोलन करना और हर रोज सरकार और सरकार समर्थकों की ओर से चली जा रही चालों का जवाब देना आसान नहीं है। ऐसे में आंदोलन खत्म कर किसान घर लौटते हैं, तो आश्चर्य नहीं। मगर इसके साथ ही सरकार की नीयत पर नजर रखना जरूरी है।

कृषि मंत्री ने तो मंगलवार को संसद में ये भी बताया था कि 2020 में किसानों की आत्महत्या के मामलों में कमी आई है और पिछले साल के मुकाबले इनकी संख्या 5,579 रही है। जबकि एनसीआरबी के ही आंकड़े बताते हैं कि किसानों और कृषि मजदूरों की आत्महत्या रुकने की बजाय बढ़ रही है। देश में 2020 के दौरान कृषि क्षेत्र में 10,677 लोगों की आत्महत्या की, इसमें 5,579 किसान और 5,098 खेतिहर मजदूरों की आत्महत्याएं शामिल हैं। दस हजार से अधिक लोगों ने जिंदा रहने की जगह मौत को गले लगाया, तो इसके पीछे जरूर बड़ी वजहें ही रही होंगी। मगर इन वजहों को जानने की जगह आंकड़ों के दम पर ये दिखाने की कोशिश की जाए कि सरकार किसानों का भला चाहती है, लेकिन कुछ किसान इस बात को समझ ही नहीं रहे, तो फिर आगे कुछ कहने-समझने की गुंजाइश ही कहां रह जाती है। किसानों ने अपनी इच्छाशक्ति के बूते सरकार को कुछ झुकने पर तो मजबूर कर दिया है, मगर राजनीति के पेंचोखम में किसानों के हित उलझ कर न रह जाएं, यह देश को देखना होगा।

कांग्रेस को कमजोर कर बीजेपी से कैसे लड़ेंगी ममता

प्रेम कुमार

गैर बीजेपीवाद की सोच ही अभी मूर्तरूप नहीं ले पाई है तो इसके परवान चढ़ने का प्रश्न कहां उठता है प्रशांत किशोर का विश्लेषण बिल्कुल सही है कि अगले कई दशक तक बीजेपी कहीं नहीं जा रही है। हालांकि इस विश्लेषण का मतलब उसका सत्ता में बने रहना भी कतई नहीं है। फिर भी इसका मतलब बीजेपी का सत्ता से बाहर हो जाना भी नहीं है। यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि विपक्ष की सियासत कैसी रहती है। कांग्रेस को कमजोर कर क्या देश में वैकल्पिक सियासत खड़ी हो सकती है- यह सवाल अचानक महत्वपूर्ण हो गया है। अगर इसका जवाब 'हां' है तो ममता बनर्जी सही दिशा में कदम उठा रही हैं। और, अगर इसका जवाब 'ना' है तो ममता गलत दिशा में जा रही हैं।

विपक्ष मजबूत और बड़ा कैसे होगा- जब देश की सबसे बड़ी पार्टी बीजेपी के जनाधार में सेंध लगेगी, जब बीजेपी से उसके प्रदेश राजनीतिक रूप से छीने जाने लगेंगे। इसके लिए वैचारिक आधार पर और जमीनी स्तर पर एक साथ बीजेपी के समांतर सक्रियता बढ़ाने की जरूरत है। आंदोलन खड़ा करना ही रास्ता है। आंदोलन पैदा करता है विकल्प-आंदोलन क्यों क्योंकि आंदोलन जोड़ता है, तोड़ता नहीं। आंदोलन ही किसी सरकार को विफल साबित करता आया है। जेपी आंदोलन से इंदिरा सरकार हिली थी तो अन्ना आंदोलन से मनमोहन सरकार। एक से गैरकांग्रेसवाद का युग शुरू हुआ था तो दूसरे ने गैरकांग्रेसवाद को स्थापित कर दिखाया। केजरीवाल सरकार गैरकांग्रेसवाद का बाय प्रोडक्ट कही जा सकती है। अब आगे क्या गैर बीजेपीवाद का नारा 2019 में परवान नहीं चढ़ पाया और 2024 तक भी ऐसा हो सकेगा, इसके आसार नजर नहीं आते। गैर बीजेपीवाद की सोच ही अभी मूर्तरूप नहीं ले पाई है तो इसके परवान चढ़ने का प्रश्न कहां उठता है प्रशांत किशोर का विश्लेषण बिल्कुल सही है कि अगले कई दशक तक बीजेपी कहीं नहीं जा रही है। हालांकि इस विश्लेषण का मतलब उसका सत्ता में बने रहना भी कतई नहीं है। फिर भी इसका मतलब बीजेपी का सत्ता से बाहर हो जाना भी नहीं है। यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि विपक्ष की सियासत कैसी रहती है। बंगाल में गैर बीजेपीवाद नहीं गैरकांग्रेसवाद जीता-गैर बीजेपीवाद की सोच क्या पश्चिम बंगाल में परवान चढ़ी थी जो लोग सियासत को समझते हैं वे जानते हैं कि ऐसा नहीं है। बंगाल में किसकी जीत हुई सच यह है कि जीत गैरकांग्रेसवाद की हुई। बीजेपी की ताकत तो वास्तव में बढ़ी है। कांग्रेस और लेफ्ट साफ हो गये, जो कभी गैरकांग्रेसवाद से लड़ाई में अक्सर एक-दूसरे के साथ हुआ करते थे। हालांकि ऐसा दिखता जरूर है कि बंगाल में जो चुनाव नतीजे सामने आए वह बीजेपी से लड़ाई के नाम पर ही आए। हास्यास्पद बात यह रही कि खुद कांग्रेस और लेफ्ट गैरकांग्रेसवाद की सियासत का औजार बन गए। अब ममता बनर्जी की दिल्ली यात्राओं के मायने समझें। ममता बनर्जी राष्ट्रीय सियासत में भी उम्मीद कर रही हैं कि कांग्रेस उसी भूमिका में रहे जिस भूमिका में बंगाल में दिखी थी। यानी बकरा बनकर हलाल हो कांग्रेस और उसका मीट बीजेपी से 'लड़ने वाले योद्धा' खाएं। क्या कांग्रेस बंगाल के बाद राष्ट्रीय स्तर पर भी बकरा बनने के लिए तैयार होगी

सोनिया गांधी से ममता बनर्जी की मुलाकात नहीं होने को इसी पृष्ठभूमि में देखे जाने की जरूरत है। ममता ने खीज दिखलाई। फिर भी कांग्रेस ने बुरा नहीं माना तो इसका मतलब यह है कि कांग्रेस के तेवर देश को 'कांग्रेसमुक्त भारत' बनाने की कोशिश और विचार से लड़ने की है। बीजेपी के हाथों सियासी रूप से कत्ल होना कांग्रेस को मंजूर है लेकिन वह अपनी ही पैदाइश तृणमूल कांग्रेस के हाथों जबह होने के लिए तैयार नहीं है। तेजस्वी-अखिलेश से सीख ले सकती हैं ममता-ममता बनर्जी को तेजस्वी और अखिलेश यादव से सीख लेनी चाहिए। दोनों दलों की सियासत में बीजेपी के मुकाबले गैरकांग्रेसवाद कभी हावी नहीं रहा। यूपी में पिछला चुनाव अखिलेश की सपा ने कांग्रेस के साथ गठबंधन करके ही हारा था। उसके बाद भी कांग्रेस से दूरी तो बढ़ी लेकिन दुश्मनी हुई हो ऐसा नहीं दिखता। बिहार में तेजस्वी यादव ने नुकसान झेलकर भी कांग्रेस के साथ मजबूत तरीके से चुनाव लड़ा। एक सोच है कि अगर ओवैसी फैक्टर नहीं होता तो तेजस्वी बिहार जीत लेते। क्या ममता बनर्जी राष्ट्रीय स्तर पर गैरकांग्रेसवाद की सियासत में असदुद्दीन ओवैसी होने जा रही हैंजो दक्षिणपंथी सियासत के लिए 'जीवनदान' साबित होंगी राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस को नुकसान पहुंचाना गैरकांग्रेसवाद को बढ़ावा देना है और ऐसा करके राष्ट्रीय स्तर पर बीजेपी का विकल्प खड़ा नहीं किया जा सकता।

आज भी अखिलेश यादव कांग्रेस को बकरा बनाने की नहीं सोचते। तेजस्वी की भावी योजना में गैरकांग्रेसवाद नहीं है। धुर दक्षिणपंथी उद्धव ठाकरे की शिवसेना भी गैरकांग्रेसवाद को खारिज करने वाली सियासत कर रहे हैं। एनसीपी नेता शरद पवार बहुत पहले मान चुके हैं कि कांग्रेस विरोध की सियासत वे भूल चुके हैं और पहले उन्होंने जो कुछ किया वह सही नहीं था। किसान आंदोलन को धार क्यों नहीं देतीं ममता-ममता बनर्जी राष्ट्रीय राजनीति में सूत्रधार की भूमिका निभा सकती हैं मगर ऐसा कांग्रेस को कमजोर करने की सियासत करते हुए नहीं हो सकता। एक टांग से बंगाल जीतने के बाद दोनों टांगों से देश जीतने की महत्वाकांक्षा सही है। मगर, इस महत्वाकांक्षा को मजबूत करने के लिए ममता को देशव्यापी आंदोलन का नेतृत्व करना होगा। जाहिर है बंगाल से बाहर निकलना होगा। ममता बनर्जी चाहें तो किसान आंदोलन को धार दे सकती हैं। वह चाहें तो महंगाई पर देश में आंदोलन का नेतृत्व कर सकती हैं। वह चाहें तो पेगासस और केंद्र राज्य संबंध जैसे मुद्दों पर भी देश की सियासत को एक-सूत्र में पिरो सकती हैं। इलेक्टोरल बॉन्ड के खिलाफ आवाज बुलंद करके भी वह नई पहल कर सकती हैं। निजीकरण और मजदूर विरोधी नीतियों पर भी ममता मुखर हो सकती हैं। मगर, इन मोर्चों पर वह सक्रिय नहीं हैं। अगर सियासत आंदोलन न होकर जोड़-तोड़ हो तो बीजेपी और बीजेपी का विकल्प बनने की कोशिश करने वाली पार्टी में फर्क ही क्या रह जाता है। सही मायने में देखा जाए तो ममता बनर्जी बीजेपी के बजाय कांग्रेस का विकल्प बनने के लिए अधिक छटपटाती दिख रही हैं। इस मकसद में अगर वह सफल होती हैं तो वह निश्चित रूप से बीजेपी की मदद कर रही हैं जैसे असदुद्दीन ओवैसी को मिलने वाली सफलता से बीजेपी को मदद मिल जाया करती है। न ओवैसी कभी मुसलमानों का नेतृत्व कर पाए हैं और न ही ममता बनर्जी कभी गैर बीजेपीवाद की सियासत का नेतृत्व कर पाएंगी।

सवाल नजर और नजरिए का है

सर्वमित्रा सुरजन

जहां तक सवाल महिला अस्मिता और सम्मान का है, तो उस पर निरंतर संवाद और विमर्श की गुंजाइश देश में है, क्योंकि महिलाओं को पूरी तरह बराबरी का दर्जा मिलने के लिए अभी कई बड़े कदम उठाने बाकी हैं। संसद में महिला आरक्षण से ले कर घर-परिवार और समाज में महिलाओं के सम्मान और अधिकारों को लेकर सजगता से फैसले लेने की जरूरत है। राष्ट्रीय महिला आयोग जैसी संस्थाओं के सामने इस क्षेत्र में अभी कई चुनौतियां हैं। संसद के शीतकालीन सत्र की शुरूआत के साथ ही मुद्दों की तपिश बढ़नी शुरू हो गई है, लेकिन इनके साथ ही गैरजरूरी बातों पर भी माहौल को गरमाने की राजनीति दिखने लगी है। मीडिया और सोशल मीडिया पर अपनी टिप्पणियों और अंग्रेजी के भारी-भरकम शब्दों के लिए अक्सर चर्चा में रहने वाले कांग्रेस सांसद शशि थरूर इस बार एक सेल्फी और उसके साथ लिखी टिप्पणी को लेकर विवादों में घिर गए। इस बार शीतकालीन सत्र के शुरू होने पर कांग्रेस सांसद शशि थरूर ने अपने आधिकारिक ट्विटर हैंडल पर बारामती की सांसद सुप्रिया सुले, पटियाला की सांसद परनीत कौर, दक्षिण चेन्नई की सांसद थमिजाची थंगापांडियन, जादवपुर की सांसद मिमी चक्रवर्ती, बशीरहाट की सांसद नुसरत जहां और करूर से सांसद एस जोथिमनी के साथ संसद में ली गई एक सेल्फी पोस्ट की। इस तस्वीर के साथ शशि थरूर ने कैप्शन दिया है कि- 'कौन कहता है कि लोकसभा काम करने के लिए आकर्षक जगह नहीं है आज सुबह मेरे साथी सांसदों के साथ। शशि थरूर के साथ ली गई इस तस्वीर में उनके समेत छहों महिला सांसद मुस्कुराती हुई नजर आ रही हैं। यानी संसद में काम के बीच एक खुशगवार पल को इन साथी सांसदों ने तस्वीर में कैद कर लिया। अलग-अलग दलों के सांसदों का यूं एक साथ हंसते-मुस्कुराते तस्वीर लेना, दरअसल भारतीय लोकतंत्र की विविधता भरी खूबसूरती का द्योतक है। विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए, भिन्न विचारधारा और दलों के ये निर्वाचित प्रतिनिधि अलग-अलग होते हुए भी एक साथ मुस्कुरा सकते हैं, साथ काम कर सकते हैं और अपने संसदीय दायित्वों को निभा सकते हैं, इस तस्वीर का यह मतलब भी निकाला जा सकता है। लेकिन यहां सवाल नजर और नजरिए दोनों का है। इसलिए शशि थरूर की इस तस्वीर पर अकारण विवाद पैदा करने की कोशिश की गई। खासकर इस तस्वीर के साथ दिए गए कैप्शन को लेकर कुछ लोगों ने नाराजगी जताई है और इसे महिला विमर्श के साथ जोड़ा गया है। सोशल मीडिया पर शशि थरूर को ट्रोल किया गया। एक यूजर ने लिखा- 'महिलाएं आपके वर्कप्लेस को आकर्षक बनाने के लिए लोकसभा में सजाने की कोई वस्तु नहीं है। वे सांसद हैं और आप उनका अपमान कर रहे हैं।' एक अन्य यूजर ने लिखा कि अगर आप अन्य सेक्टर में होते तो आपको अट्रैक्टिव कहने के लिए निकाल दिया जाता। सुप्रीम कोर्ट की वकील करुणा नंदी ने लिखा, अविश्वसनीय है कि किसी ने इस मुद्दे को उठाया है, क्योंकि शशि थरूर ने निर्वाचित महिला नेताओं के सिर्फ लुक तक सीमित करने की कोशिश की। राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष रेखा शर्मा सहित कुछ नामचीन महिलाओं ने उस तस्वीर और टिप्पणी को अभद्र तथा थरूर की संकीर्ण सोच का परिचायक माना।

भाजपा विधायक राजेश नागर ने शशि थरूर को नसीहत देते हुए लिखा कि लोकसभा विधायी कार्यों के लिए है, महिलाओं के साथ सेल्फी लेकर उन्हें आकर्षक कहने के लिए नहीं है। आप भावी सांसदों के लिए गलत मिसाल पेश कर रहे हैं। इस पर टीएमसी की सांसद मिमी चक्रवर्ती ने स्पष्ट कर दिया कि यह सेल्फी उन्होंने ली है, शशि थरूर ने नहीं ली है। इस तस्वीर में शशि थरूर के साथ टीएमसी सांसद महुआ मोइत्रा तो नहीं हैं, लेकिन इस विवाद पर शशि थरूर का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है कि एक अनाकर्षक सरकार के कृषि कानून निरसन विधेयक पर चर्चा न कराने के फैसले से ध्यान हटाने के लिए यह गैर जरूरी मुद्दा खड़ा किया जा रहा है। आप जानते ही हैं कि कृषि कानून निरसन विधेयक को मोदी सरकार ने लोकसभा और राज्यसभा दोनों जगह चंद मिनटों में पारित करवा दिया और विपक्ष की मांग के बावजूद इस पर चर्चा नहीं की। सरकार के इस अलोकतांत्रिक रवैये पर सवाल उठ रहे हैं। इसके अलावा भी राज्यसभा में 12 विपक्षी सांसदों का निलंबन, उनसे माफी की मांग करना, किसान आंदोलन, पेगासस जासूसी कांड में नए खुलासे, अजय मिश्र टेनी की बर्खास्तगी, महंगाई ऐसे कई मुद्दे हैं, जिन पर सरकार संसद में घिर सकती है। इसलिए सरकार लगातार चर्चा से भाग रही है, ताकि उसे विपक्ष के सवालों का सामना न करना पड़े। ऐसे में महुआ मोइत्रा के इस कथन से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि शशि थरूर के बहाने गैर जरूरी विवाद खड़ा किया जा रहा है। हालांकि शशि थरूर ने उनकी फोटो और उस पर की गई टिप्पणी से जिन लोगों को ठेस पहुंची, उनसे माफी मांग ली है। श्री थरूर ने अपनी सफाई में कहा, सेल्फी का यह पूरा प्रकरण महिला सांसदों की पहल पर किया गया था और बेहद खुशनुमा माहौल में किया गया था। उन्हीं की पहल पर मैंने उसी भावना के साथ इसे ट्वीट किया था। अगर किसी से इसकी भावनाएं आहत हुई हों तो मैं क्षमा मांगता हूं। लेकिन मैं कार्यस्थल पर अपने सहयोगियों के साथ इस पहल में शामिल होने को लेकर खुश हूं। इसके बाद उन्होंने 30 नवंबर को संसद के अपने कुछ पुरुष सहयोगियों के साथ भी एक तस्वीर पोस्ट की है, जिसके साथ एक मजाकिया लहजे में कैप्शन लिखा है कि 'संसद के अपने कुछ और सहयोगियों के साथ 'हालांकि इसके वायरल होने की कोई उम्मीद नहीं है। लेकिन मैं समान अवसर का अपराधी हूं। वैसे इस तस्वीर पर भी शशि थरूर को सोशल मीडिया पर विरोध का सामना करना पड़ा, किसी ने लिखा कि इस तस्वीर के साथ आपने आकर्षक शब्द का इस्तेमाल क्यों नहीं किया, तो किसी ने इसे क्षतिपूर्ति जैसा करार दिया। कुछ लोगों का काम दिन भर सोशल मीडिया पर सक्रिय रहकर विरोधियों की आलोचना करना ही होता है, इसे ही ट्रोल आर्मी कहा जाता है। और इससे मुकाबला करने का आसान तरीका यही है कि आप जरूरी मुद्दों पर अपनी आवाज उठाते रहिए और राई का पहाड़ बनाने वाली टिप्पणियों से खुद को बचाते रहिए। शशि थरूर ने जब महिला सांसदों के साथ यह तस्वीर खिंचवाई होगी, तो न उन्हें न उनकी साथी सांसदों को यह इल्म रहा होगा कि इस पर इस तरह विवाद खड़ा हो सकता है। और जहां तक सवाल महिला अस्मिता और सम्मान का है, तो उस पर निरंतर संवाद और विमर्श की गुंजाइश देश में है, क्योंकि महिलाओं को पूरी तरह बराबरी का दर्जा मिलने के लिए अभी कई बड़े कदम उठाने बाकी हैं।

संसद में महिला आरक्षण से ले कर घर-परिवार और समाज में महिलाओं के सम्मान और अधिकारों को लेकर सजगता से फैसले लेने की जरूरत है। राष्ट्रीय महिला आयोग जैसी संस्थाओं के सामने इस क्षेत्र में अभी कई चुनौतियां हैं। बाल विवाह, दहेज, यौन शोषण, छेड़छाड़, घर और कार्यस्थलों पर उत्पीड़न, भेदभाव, कन्या भ्रूण हत्या, बलात्कार, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार, पुरुषों से कम वेतन मिलना, रक्षा, खेल, पत्रकारिता, मनोरंजन आदि क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं के संघर्ष, विज्ञापनों में महिला की गरिमा को कम करने का चित्रण, ऐसी सैकड़ों समस्याएं हैं, जिन पर अगर सरकारी और गैरसरकारी संस्थाएं दिन-रात काम करें, तब जाकर महिलाओं की स्थिति में थोड़े बहुत सुधार की उम्मीद हम कर सकते हैं। लेकिन उसकी जगह इस वक्त एक गैरजरूरी मुद्दे पर बहस में शक्ति व्यर्थ की जा रही है।

यह सही है कि सार्वजनिक जीवन में सक्रिय व्यक्तियों को हमेशा सतर्क रहकर ही कोई टिप्पणी करना चाहिए। क्योंकि उनके कहे या लिखे का असर व्यापक होता है। लेकिन शशि थरूर प्रकरण में यह साफ नजर आ रहा है कि उन्होंने स्वस्थ भावना से कैप्शन लिखा, उसमें कोई गलत इरादे नहीं हैं। कुछ समय पहले अमिताभ बच्चन ने अपने शो केबीसी में आईएमएफ की अर्थशास्त्री गीता गोपीनाथ के लिए कहा था कि 'इतना खूबसूरत चेहरा इनका, इकॉनामी के साथ कोई जोड़ ही नहीं सकता...' इस टिप्पणी को कई लोगों ने महिला विरोधी मानते हुए अमिताभ बच्चन की आलोचना की थी। हालांकि खुद गीता गोपीनाथ ने इस पर खुशी जताई थी कि सदी के महानायक बिग बी की जबरदस्त प्रशंसक होने के नाते ये मेरे लिए खास है। यहां भी सवाल नजरिए का ही है। क्योंकि अमूमन अर्थशास्त्र को नीरस और बोझिल विषय माना जाता है और अर्थशास्त्री धीर-गंभीर मुद्रा में दिखते हैं। ऐसे में गीता गोपीनाथ के हंसते-मुस्कुराते चेहरे पर कही गई इस बात को गलत तरीके से नहीं देखा जाना चाहिए। इससे पहले रघुराम राजन के आकर्षक व्यक्तित्व के बारे में भी लिखा जा चुका है। हल्की-फुल्की टिप्पणियों को खुलेमन से ही सुना और समझा जाए, तो उसका आनंद उठाया जा सकता है। उन्हें सिद्धांतों और नैतिकता के खांचे में जबरन डालने से उनका विद्रूप होना स्वभाविक है। अगर संसद में महिलाओं की बेहतरी, उनके सम्मान की फिक्र ही करना है, तो प्रधानमंत्री मोदी ने रेणुका चौधरी की हंसी की तुलना टीवी पर आने वाले रामायण के किरदार से की थी, उसे याद रखना चाहिए। हर बात को महिला विमर्श से जोड़ना सही नहीं है, क्योंकि इससे महिला अधिकारों से जुड़े असल मुद्दे दब जाते हैं और महिला उत्पीड़न के खतरे और बढ़ जाते हैं। शायर अमीर मीनाई ने फरमाया है-...

कौन सी जा है जहां जल्वा-ए-माशूक नहीं,
शौक-ए-दीदार अगर है तो नजर पैदा कर

पश्चिम यूपी में किसकी चल रही है हवा

बृजेश शुक्ल

लगभग दो दशक बाद पश्चिमी उत्तर प्रदेश की राजनीति में किसान आंदोलन की सफलता से उत्साहित राष्ट्रीय लोक दल अपनी शर्तों पर चुनावी समझौता कर रहा है। आरएलडी का समाजवादी पार्टी से चुनावी समझौता लगभग तय हो चुका है। क्या पश्चिम उत्तर प्रदेश की हवाएं कुछ बदल गई हैं, जो आरएलडी इस कदर उत्साहित है और उससे चुनावी समझौता करने वाली एसपी भी। आगामी विधानसभा चुनाव को देखते हुए जाटलैंड की जमीनी हकीकत क्या है वर्ष 2019 के लोकसभा चुनाव के समय पश्चिमी उत्तर प्रदेश का दौरा करते हुए यह साफ दिखा था कि बीजेपी को शिकस्त दे पाना बहुत कठिन है। हालांकि जातीय समीकरणों की दृष्टि से विपक्षी दलों का वह सबसे मजबूत गठजोड़ था। फिर भी महागठबंधन से खड़े अजित सिंह (मुजफ्फरनगर) और उनके पुत्र जयंत (बागपत) दोनों चुनाव हार गए थे। क्या इस बार गन्ना बेल्ट में किसान आंदोलन के असर और महंगाई जैसे मुद्दों के कारण आरएलडी और समाजवादी पार्टी के गठजोड़ से बीजेपी मात खा जाएगी यह लाख टके का सवाल है और इसका उत्तर सभी तलाश रहे हैं। प्रश्न यह भी है कि वे कौन से कारण थे कि विपक्षी दलों का मजबूत महागठजोड़ 2019 में बीजेपी को शिकस्त नहीं दे सका था और वे कौन से कारक हैं जिनके आधार पर माना जाए कि बीजेपी इस बार अपनी मजबूत जमीन खो सकती है। कहा जा सकता है कि किसान नाराज हैं, महंगाई बहुत है, मुस्लिम और जाट एकजुट हो गए हैं, इसलिए बीजेपी के लिए यह मैदान कठिन हो गया है। लेकिन जमीनी हकीकत तक पहुंचने पर इस आकलन में तमाम किंतु-परंतु लग जाते हैं। दलितों की संख्या की दृष्टि से उर्वरा इस भूमि में इस बार बीएसपी अकेले चुनाव मैदान में है और इसमें कोई दो राय नहीं कि दलितों का एक बड़ा वर्ग फिलहाल मायावती के साथ खड़ा दिखता है। 2019 में मायावती समर्थक मतदाताओं को लगता था कि इस बार उनकी नेता प्रधानमंत्री बन सकती हैं। इसलिए वे एकजुट होकर महागठबंधन के साथ थे। इसके बावजूद परिणाम विपरीत आए। ऐसे में इस बार जब दलित एसपी-आरएलडी गठजोड़ के साथ जाते नहीं दिख रहे हैं तो क्या यह गठजोड़ चमत्कार कर पाएगा

किसान आंदोलन का सबसे ज्यादा असर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ही हुआ है। 2013 में मुजफ्फरनगर में हुए दंगों के बाद सामाजिक समीकरण बदल गए थे। लेकिन गैर-बीजेपी दलों को लगता है कि अब जाटों और मुसलमानों के बीच दूरी कम हुई है। जमीन पर यह दिखता भी है कि आपसी कटुता कम हुई है। किसान आंदोलन के नाम पर सभी एक साथ आए हैं। कुल मिलाकर, यह निश्चित है कि जाट मतदाताओं का एक बड़ा वर्ग बीजेपी सरकार से नाराज है और वह आरएलडी की तरफ देख रहा है। राष्ट्रीय लोक दल उसकी स्वभाविक पार्टी रही है।

चिंताजनक है जीका वायरस का हमला

योगेश कुमार गोयल

देश में कोरोना संक्रमण के मामलों में भले ही लगातार कमी देखी जा रही है लेकिन पिछले कुछ महीनों से देश के कई राज्यों में डेंगू के बढ़ते मामलों के साथ कुछ दिनों से जीका वायरस ने भी नई चिंता को जन्म दिया है। उत्तर भारत और खासकर उत्तर प्रदेश में जीका वायरस के मामले जिस तेजी के साथ सामने आए हैं, उससे चिंता का माहौल बनना स्वाभाविक है। उत्तर प्रदेश के कानपुर, कन्नौज, लखनऊ, मथुरा सहित कई जिलों में जीका वायरस के मामले सामने आए हैं और अब फतेहपुर जिले में भी जीका वारयस का केस सामने आने के बाद वहां स्वास्थ्य विभाग में हड़कंप मचा है। उत्तर प्रदेश का कानपुर जिला तो जीका वायरस और डेंगू का हॉटस्पॉट बना हुआ है, जहां जीका का पहला मामला 24 अक्तूबर को सामने आया था और उसके बाद से वहां पिछले करीब एक महीने में ही इसके 140 से भी अधिक मरीज सामने आ चुके हैं। जीका संक्रमण को लेकर चिंताजनक स्थिति यह है कि यह वायरस सामान्य लोगों के अलावा गर्भवती महिलाओं को भी संक्रमित कर रहा है। अब तक कई गर्भवती महिलाएं जीका वायरस से संक्रमित मिल चुकी हैं। इस वर्ष जीका वायरस का पहला मामला केरल में 8 जुलाई 2021 को सामने आया था, जिसके बाद केरल में जीका वायरस के मामले अचानक सामने आने लगे और ऐसे मामलों की संख्या 64 तक पहुंच गई थी। वहां जीका से एक मरीज की मौत की खबर सामने आई थी। महाराष्ट्र में भी जीका वायरस का मामला सामने आया था लेकिन अब उत्तर प्रदेश में जीका का प्रकोप चिंता का सबब बना है। केरल के बाद अब उत्तर प्रदेश में जीका के बढ़ते मामलों को देखते हुए स्पष्ट है कि बारिश के बाद मच्छरों को पनपने से रोकने के लिए सरकारी तंत्र द्वारा लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए समुचित प्रबंध नहीं किए गए। सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि जहां शहरी और महानगरीय क्षेत्रों में ही करीब 80 फीसदी लोगों को इस वायरस और इससे होने वाली बीमारी के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है, वहीं ग्रामीण परिवेश में तो लोग इससे पूरी तरह अनजान हैं, इसके बावजूद स्वास्थ्य विभाग द्वारा अब तक देशभर में कहीं ऐसा कोई अभियान नहीं चलाया गया है, जिससे लोगों में जीका वायरस संक्रमण के प्रति जागरूकता पैदा की जा सके। आज भी देश में अधिकांश लोग नहीं जानते कि जीका आखिर है क्या, इससे क्या बीमारियां पैदा होती हैं और उनके क्या लक्षण सामने आते हैं। जीका एक खतरनाक वायरस है, जो उसी एडीज मच्छर के काटने से फैलता है, जो डेंगू, चिकनगुनिया, निपाह, जापानी इन्सेफेलाइटिस, फाइलेरिया, मलेरिया इत्यादि बीमारियों का जनक है, यह मच्छर प्रायः दिन के समय सक्रिय रहता है। अधिकांशतः गर्भवती महिलाएं इस वायरस की शिकार बनती हैं। इससे गर्भपात और मृत बच्चे के पैदा होने का भी खतरा रहता है। यह जन्म लेने वाले बच्चे के विकास पर बहुत दुष्प्रभाव डालता है, इससे पीड़ित महिलाओं के बच्चे अविकसित दिमाग के साथ पैदा होते हैं। करीब 70 से 80 फीसदी मामलों में जीका संक्रमित व्यक्ति में लक्षणों की पहचान नहीं हो पाती, इसलिए जीका वायरस से बचने के लिए सबसे बड़ा हथियार जागरूकता को ही माना गया है। जीका वायरस पर नियंत्रण के लिए दुनियाभर में अब तक कोई कारगर वैक्सीन नहीं बनी है। जो उपाय डेंगू, चिकनगुनिया इत्यादि फैलाने वाले मच्छरों से बचने के लिए बताए जाते रहे हैं, वही उपाय जीका वायरस फैलाने वाले मच्छर से बचने के लिए भी किए जाते हैं, जैसे अपने आसपास साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखना, कहीं भी पानी को ठहरने न देना, मच्छरदानी का प्रयोग, मच्छरों की अधिकता वाले क्षेत्रों में पूरे कपड़े पहनना, मच्छरनाशक चीजों का इस्तेमाल तथा बगैर जांच के रक्त शरीर में न चढ़वाना इत्यादि। जीका वायरस से संक्रमित होने पर दर्द तथा बुखार की सामान्य दवाएं दी जाती हैं किन्तु लक्षण प्रबल होने पर विशेषज्ञ से परामर्श करना अत्यावश्यक हो जाता है। जीका वायरस खतरनाक इसलिए माना जाता है क्योंकि इसके इंफैक्शन तथा उससे होने वाली बीमारियों का अभी तक कोई उपचार उपलब्ध नहीं है और कुछ मामलों में इससे लकवे के साथ मौत होने की संभावना भी रहती है। जीका वायरस गर्भवती मां से बच्चे में तथा शारीरिक संबंधों से भी स्थानांतरित होते हैं। इससे प्रभावित लोगों को हल्का बुखार, आंखों में संक्रमण, सिरदर्द, मांसपेशियों व जोड़ों में दर्द, त्वचा पर चकते इत्यादि लक्षण सामने आते हैं, जो प्रायः 2-5 दिन तक रहते हैं।

ओमिक्रॉन की वजह से सीएसए ने स्थगित किए घरेलू मैच, भारत के साउथ अफ्रीका दौरे पर संकट गहराया

नई दिल्ली। भारत के साउथ अफ्रीका दौरे पर लगातार संकट गहराता जा रहा है। क्रिकेट दक्षिण अफ्रीका (सीएसए) ने टीम के कुछ सदस्यों के कोविड-19 पॉजिटिव पाए जाने के बाद एक दौर के घरेलू मैच स्थगित कर दिए हैं। इसके बाद इस महीने होने वाले भारत के साउथ अफ्रीका दौरे को लेकर चिंता बढ़ गई है। भारतीय क्रिकेट बोर्ड (बीसीसीआई) जल्द ही दौरे को लेकर फैसला करेगा जो यहां 17 दिसंबर को पहले टेस्ट के साथ शुरू होना है। दक्षिण अफ्रीका में कोविड के नए वेरिएंट ओमिक्रॉन के पाए जाने के बाद भारत सीरीज पर संदेह के बादल छा गए हैं। बोर्ड ने बयान में कहा, 'क्रिकेट दक्षिण अफ्रीका पुष्टि करता है कि

डिविजन टू सीएसए चार दिवसीय घरेलू सीरीज के चौथे दौर के सभी तीन मैच स्थगित कर दिए गए हैं जो दो से पांच दिसंबर के बीच होने थे। यह प्रतियोगिता बायो बबल में नहीं हो रही और पिछले कुछ दिनों में टीम के पहुंचने से पहले परीक्षण में कुछ पॉजिटिव मामले सामने आए हैं। खेल से जुड़े सभी लोगों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और बेहतरी को सुनिश्चित करने के लिए संगठन के कोविड-19 एहतियाती कदमों को लागू करना सीएसए की शीर्ष प्राथमिकता है।'अगर भारतीय सीरीज होती है तो यह कड़े बायो-बबल में सुरक्षित माहौल में होगी। बोर्ड ने कहा, 'सीएसए स्थिति पर करीबी नजर रखे हुए है और समय आने पर साल के बाकी मैचों के संदर्भ में फैसला किया जाएगा। साथ ही इसी वीकएंड में होने वाले सीएसए बी वर्ग तीन दिवसीय और वनडे मैचों को भी 2022 तक स्थगित कर दिया गया है।' भारत को साउथ अफ्रीका दौरे में तीन टेस्ट, तीन वनडे और 4 टी-20 इंटरनेशनल मैच खेलने हैं।

विराट कोहली ने बताया, ऋद्धिमान साहा दूसरे टेस्ट में खेलने के लिए पूरी तरह फिट, टीम कॉम्बिनेशन पर कही ये बात

नई दिल्ली। टीम इंडिया के कप्तान विराट कोहली ने गुरुवार को जानकारी दी कि विकेटकीपर ऋद्धिमान साहा न्यूजीलैंड के खिलाफ दूसरे टेस्ट में खेलने के लिए पूरी तरह से तैयार हैं। उन्होंने पुष्टि की साहा अपनी गर्दन की चोट से उबर चुके हैं। भारत और न्यूजीलैंड के बीच दो टेस्ट मैचों की सीरीज का दूसरा और आखिरी टेस्ट शुक्रवार से वानखेड़े स्टेडियम में खेला जाएगा।

दोनों देशों के बीच पहला टेस्ट कानपुर में खेला गया था। ये टेस्ट मैच ड्रॉ रहा था। विराट को पहले टेस्ट में आराम दिया गया था। कोहली ने दूसरे टेस्ट के शुरू होने से पहले मीडिया से बातचीत में कहा, 'फिलहाल साहा फिट हैं। वह अपनी गर्दन की ऐंठन से उबर चुके हैं और बिल्कुल ठीक हैं। हम जल्दी ही टीम कॉम्बिनेशन पर चर्चा करेंगे। हमें मौसम में बदलाव को हमें ध्यान में रखाना होगा और हमें उसी के अनुसार कॉम्बिनेशन चुनना होगा। दिन के अंत में, आप यह अनुमान नहीं लगा सकते कि क्या स्थिति पाचों दिन ऐसी बनी रहेगी या नहीं। इसलिए हमें ऐसे गेंदबाजों को चुनना होगा, जो सभी परिस्थितियों में निपट सकें।'

गर्दन में ऐंठन की वजह से ऋद्धिमान साहा पहले टेस्ट के पांचवें दिन मैदान में नहीं उतर सके थे। उनकी जगह केएस भरत ने विकेटकीपिंग की। ऐसी संभावना जताई जा रही है कि उनका शुक्रवार से शुरू हो रहे टेस्ट मैच में डेब्यू हो सकता है। साहा ने दूसरी पारी में भारत के 51 रन पर पांच विकेट गिरने के बाद नाबाद 61 रन बनाए थे।

पाकिस्तान ने वेस्टइंडीज के खिलाफ वनडे और टी-20 सीरीज के लिए टीम का किया ऐलान

नई दिल्ली। पाकिस्तान ने वेस्टइंडीज के खिलाफ घरेलू सीरीज के लिए गुरुवार को टीम का ऐलान कर दिया। पाकिस्तान ने तेज गेंदबाज हसन अली और टीम के पूर्व कप्तान सरफराज अहमद को वनडे और टी-20 सीरीज से बाहर कर दिया है। टीम के अनुभवी ऑलराउंडर शोएब मलिक और इमाद वसीम को टी-20 सीरीज के लिए भी नहीं चुना गया है। वेस्टइंडीज पाकिस्तान के खिलाफ तीन वनडे और तीन टी-20 इंटरनेशनल मैच खेलेगा। ये सभी मैच 13 से 22 दिसंबर तक कराची के नेशनल स्टेडियम में होंगे। बाबर आजम को पाकिस्तान की वनडे और टी-20 टीम का कप्तान बनाया गया है। टी-20 के लिए 15 सदस्यीय टीम का ऐलान किया गया। बांग्लादेश के खिलाफ हाल में खत्म हुई सीरीज में पाकिस्तान ने 18 सदस्यीय टीम चुनी थी। मोहम्मद हसनैन को 15 सदस्यीय टी-20 टीम में जगह दी गई है। टी-20 टीम से शोएब मलिक, हसन अली, सरफराज अहमद और इमाद वसीम को बाहर कर दिया गया है। बांग्लादेश के खिलाफ सीरीज में ये टीम का हिस्सा थे। वनडे के लिए 17 सदस्यीय टीम चुनी गई है। हसन अली और सरफराज अहमद को वनडे टीम में भी नहीं चुना गया है। अब्दुल्ला शफीक को रिजर्व के तौर पर टीम में चुना गया है। तीन मैचों की वनडे सीरीज आईसीसी मेंस वनडे सुपर लीग का हिस्सा होगी।

मुंबई इंडियंस ने हार्दिक पांड्या को नहीं किया रिटेन

नई दिल्ली। टीम इंडिया के स्टार ऑलराउंडर हार्दिक पांड्या को मंगलवार को मुंबई इंडियंस ने आईपीएल 2022 के लिए होने वाली मेगा ऑक्शन से पहले रिलीज कर दिया। पांड्या ने साल 2015 में मुंबई इंडियंस की तरफ से डेब्यू किया था। उसके बाद उन्होंने मुंबई को अपने दम पर कई मुकाबलों में जिताया। आईपीएल 2021 हार्दिक के लिए खराब रहा। अपनी चोट की वजह से वो लंबे समय तक गेंदबाजी नहीं कर पाए। एक बल्लेबाज के तौर पर टीम की तरफ से खेले। 12 मैचों में हार्दिक 127 रन बना पाए। हार्दिक ने मुंबई इंडियंस से रिलीज होने के बाद एक भावुक वीडियो पोस्ट किया। पांड्या ने मुंबई इंडियंस की तरफ से खेलते हुए हार्दिक ने 2015, 2017, 2019 और 2020 में आईपीएल ट्रॉफी जीती। हार्दिक ने इंस्टाग्राम में वीडियो शेयर करते हुए लिखा,' मैं इन यादों को जीवन भर अपने साथ रखूंगा। मैं इन पलों को अपने साथ जीवन भर सहेज के रखूंगा। मैंने

जो दोस्ती की है, जो बंधन बनाए हैं, जो लोग और प्रशंसक हैं, मैं हमेशा उनका आभारी रहूंगा। मैं सिर्फ खिलाड़ी नहीं बल्कि एक व्यक्ति के तौर पर भी विकसित हुआ हूं। मैं यहां एक युवा के रूप में बड़े सपने लेकर आया था। हम साथ जीते, साथ हारे, हम साथ लड़े। इस टीम के साथ हर पल मेरे लिए दिल में खास जगह रखता है। वे कहते हैं कि सभी अच्छी चीजें खत्म होनी चाहिए लेकिन मुंबई इंडियंस के लिए हमेशा मेरे दिल में खास जगह रहेगी। हार्दिक पांड्या के साथ उनके बड़े भाई क्रुणाल पांड्या को भी फ्रेंचाइजी ने रिलीज कर दिया है। मुंबई इंडियंस ने चार खिलाड़ियों को रिटेन किया है। इनमें मुंबई इंडियंस के कप्तान रोहित शर्मा, टीम इंडिया के तेज गेंदबाज जसप्रीत बुमराह और बल्लेबाज सूर्यकुमार यादव हैं। वेस्टइंडीज के कीरोन पोलार्ड एकमात्र विदेशी खिलाड़ी हैं जिन्हें रिटेन किया गया है।

धनंजय डिसिल्वा ने जड़ी नाबाद सेंचुरी, श्रीलंका मजबूत स्थिति में

नई दिल्ली। धनंजय डिसिल्वा के करियर के आठवें शतक की मदद से श्रीलंका ने वेस्टइंडीज के खिलाफ दूसरे टेस्ट क्रिकेट मैच के चौथे दिन गुरुवार को अपनी दूसरी पारी में आठ विकेट पर 328 रन बनाकर अपनी स्थिति मजबूत कर ली। श्रीलंका को अब 279 रन की बढ़त हासिल हो गई है। पूरी संभावना है कि खेल के पांचवें और आखिरी दिन वह अपनी पारी जल्द समाप्त करके स्पिनरों के अनुकूल परिस्थितियों में वेस्टइंडीज को कड़ी चुनौती देगा। वेस्टइंडीज ने श्रीलंका के 204 रन के जवाब में अपनी पहली पारी में 253 रन बनाकर 49 रन की बढ़त हासिल की थी, लेकिन तब उसके बल्लेबाजों को स्पिनरों को खेलने में परेशानी हुई थी। श्रीलंका की दूसरी पारी का आकर्षण धनंजय का नाबाद शतक रहा। वह अभी 153 रन बनाकर खेल रहे हैं। इसके लिए उन्होंने 259 गेंदों का सामना करके 11 चौके और दो छक्के लगाए हैं। उनके साथ लसिथ इम्बुलदेनिया 25 रन बनाकर खेल रहे हैं। इन दोनों ने अभी तक नौवें विकेट के लिए 107 रन की साझेदारी की है। श्रीलंका ने सुबह दो विकेट पर 46 रन से आगे खेलना शुरू किया लेकिन उसने चरित असलंका (19) का विकेट जल्दी गंवा दिया। इसके बाद धनंजय ने सलामी बल्लेबाज पथुम निसांका (66) का अच्छा साथ दिया। इन दोनों ने चौथे विकेट के लिए 78 रन की साझेदारी की।

गोष्ठी में मंचासीन मुख्यअतिथि व बीईओ

अभिभावकों के खाते में भेजे गए पैसे से खरीदे जूता-मोजा और ड्रेस

अखंड भारत संदेश

ज्ञानपुर। डीबीटी के माध्यम से अभिभावकों के खाते में भेजी गई धनराशि का सदुपयोग करें। जूते-मोजे और ड्रेस के निमित्त मिले पैसे का सदुपयोग करें और बच्चे के संपूर्ण ड्रेस में ही स्कूल भेजें। आज कंपोजिट विद्यालय जोरई प्रांगण में हुई विद्यालय प्रबंध समिति की बैठक में अभिभावकों की जागरुकता पर जोर दिया गया। समिति ने कहा कि अभिभावकों को पाल्यों की शिक्षा के लिए जागरुक किया जाए।

ज्ञानपुर ब्लाक के ब्लाक स्तरीय उन्मुखी कार्यक्रम/संगोष्ठी में बीईओ ज्ञानपुर रवींद्र शुक्ल ने ग्राम प्रधान तथा विद्यालय समितियों के अध्यक्ष को विद्यालय में सहयोग करने, डीबीटी के माध्यम से अभिभावकों के खाते में भेजी गई धनराशि का सदुपयोग करने के लिए प्रेरित करने का आह्वान किया।

ड्राप आउट बच्चों के नामांकन पर भी मंथन

जिला समन्वयक कल्पना मिश्रा ने सरकार द्वारा बच्चों को दी जाने वाली सुविधाओं के बारे में विस्तार पूर्वक बताया। इसी के साथ एआरपी योगेश कुमार मौर्य द्वारा ड्राप आउट, आउट आफ स्कूल बच्चों को विद्यालय में नामांकित कराने की शारदा योजना पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला। अन्य एआरपी संदीप दुबे द्वारा अभिभावकों को विद्यालय से कैसे जोड़ा जाए, के बारे में विस्तार से बताया।

अनुग्रह धनराशि के लिए अविलंब करें आवेदन

भदोही। अपर जिलाधिकारी (फाइनेंस) शैलेंद्र कुमार मिश्र ने बताया कि कोविड-19 संक्रमण से मृत व्यक्तियों के परिजनों को 50 हजार रुपये की अनुग्रह धनराशि प्रदान की जानी है। इसके लिए कोरोना काल में असमय काल कवलित हुए लोगों के परिजन राज्य आपदा मोचक निधि (एसडीआरएफ) का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। जिलाधिकारी ने कहा कि जनपद में कोविड-19 के संक्रमण से काल-कवलित हुए व्यक्तियों के परिजनों से अपेक्षा की जाती है कि वह अहैतुक सहायता प्राप्त करने के लिए आधार कार्ड, बैंक पासबुक की छायाप्रति, मृत्यु प्रमाणपत्र, कोविड आरटी पीसीआर एंटीजन रिपोर्ट के साथ आवेदन पत्र संलग्नक प्रारूप पर शीघ्र संबंधित तहसील कार्यालय अथवा जिलाधिकारी कार्यालय में उपलब्ध कराएं।

ओमिक्रॉन का भारत के साउथ अफ्रीका दौरे पर पड़ सकता है असर, 3 की जगह इतने मैचों की हो सकती है टेस्ट सीरीज

नई दिल्ली। भारत के साउथ अफ्रीका दौरे पर कोविड 19 के नए वेरिएंट ओमिक्रॉन का असर पड़ सकता है। बीसीसीआई क्रिकेट साउथ अफ्रीका से भारत का दौरा रिशेड्यूल करने का अनुरोध कर सकता है। बीससीआई क्रिकेट साउथ अफ्रीका से भारत का दौरा एक सप्ताह आगे खिसकाने के अनुरोध के साथ-साथ तीन टेस्ट मैचों की सीरीज को घटाकर दो टेस्ट मैचों की सीरीज करने को कह सकता है। भारत का साउथ अफ्रीका दौरा फिलहाल 17 दिसंबर से शुरू होने वाला है। इस दौरे में भारत को तीन टेस्ट, तीन वनडे और 4 टी-20 इंटरनेशनल मैच खेलने हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक बीसीसीआई सीरीज को एक हफ्ते के लिए स्थगित करने का अनुरोध कर सकता है और फिर कार्यक्रम की घोषणा कर सकते हैं। यदि एक टेस्ट को शेड्यूल से हटाया जाता है तो बीसीसीआई इसके बदले अगले साल साउथ अफ्रीका के

साथ पांच मैचों की टी-सीरीज खेलने का समझौता कर सकता है।

बीसीसीआई के सूत्रों का कहना है कि वो इंटरनेशनल बोर्डों के साथ अपनी प्रतिबद्धता को समझते हैं और उनके हितों की रक्षा के लिए हर संभव कदम उठाएंगे। पिछले साल नवंबर में तमाम बाधाओं के बावजूद भारत ने ऑस्ट्रेलिया का दौरा किया था।

दूसरे टेस्ट मैच के बाद बीसीसीआई खिलाड़ियों से बात करेगा और साउथ अफ्रीका दौरे के लिए बनाए जा रहे प्रोटोकॉल और प्रक्रियाओं के बारे में बताएगा। अगर भारत दक्षिण अफ्रीका में तीन टेस्ट मैच खेलता तो कोहली का 100वां टेस्ट कैपटाउन में होता। दो टेस्ट होने की स्थिति में विराट बैंगलोर के चिन्नास्वामी स्टेडियम में श्रीलंका के खिलाफ अपना 100 वां टेस्ट मैच खेलेंगे।

सपा के पूर्व मंत्री आलोक शाक्य और विधायक राजू यादव पर मुकदमा

सोशल मीडिया पर जमकर वायरल हुआ था ऑडियो फोन पर वातचीत में एमएलसी को दी थी गालियां

अखंड भारत संदेश

मैनपुरी। सपा मुखिया अखिलेश यादव के चाणक्य कहे जाने वाले प्रो. रामगोपाल यादव के भांजे एमएलसी अरविंद यादव पर अमार्यादित टिप्पणी और गाली गलौज करना पार्टी के पूर्व मंत्री आलोक शाक्य और सदर विधायक राजू यादव भारी पड़ गया है। सोशल मीडिया पर वायरल हुए ऑडियो को पार्टी हाईकमान ने गंभीरता से लेते हुए दोनो के खिलाफ एफआईआर कराने के आदेश दिए। एमएलसी अरविंद यादव ने दोनो नेताओ के खिलाफ करहल थाने में मुकदमा दर्ज कराया है। इस कार्रवाई से मुलायम सिंह के गढ़ में खलवली मच गई है। वहीं टिकट की दौड़ में शामिल पूर्व मंत्री और सदर विधायक की मुश्किलें बढ़ गई है। ज्ञात हो कि सोशल मीडिया प्लेट

दोनों ने फोन पर बातचीत में एमएलसी अरविन्द यादव को दी थी गालियां

अलोक शाक्य पूर्व मंत्री।

फॉर्म वाट्सऐप पर सोमवार की रात्रि को एक ऑडियो रिकॉडिंग वायरल हुई। वायरल ऑडियों में सपा से सदर विधायक राजकुमार उर्फ राजू यादव और भोगांव विधानसभा से सपा के पूर्व विधायक व सपा के

सपा हाईकमान के आदेश पर एमएलसी अरविन्द यादव ने दर्ज कराई एफआईआर

राजकुमार उर्फ राजू यादव।

पूर्व मंत्री आलोक शाक्य मोवाइल फोन पर आपस में हुई वार्ता के दौरान सपा के चाणक्य कहे जाने वाले नेता सपा के राष्ट्रीय महासचिव प्रो. रामगोपाल के सगे भांजे एमएलसी अरविंद यादव को अश्लील गाली, अरविंदा की/। इस ऑडियो के वायरल होने के वाद ऑडियो एमएलसी को मिली।

जिसके वाद एमएलसी ने थाने में तहरीर देकर पूर्व मंत्री और विधायक के खिलाफ करहल थाने में मुकदमा दर्ज करा दिया है। सपा के नेताओ पर मुकदमा के दर्ज होने के वाद समाजवादी पार्टी में फिर से एक नया भूचाल आने प्रवल संभावना वन गई है।

पूर्व मंत्री और विधायक पर निष्कासन की तलवार !

अखंड भारत संदेश

मैनपुरी। सोशल मीडिया वयरल ऑडियो का मामला पार्टी हाईकमान तक पहुंचा। पार्टी हाईकमान मामले को गंभीरता से लेते हुए दोनो ही आरोपी नेताओ के खिलाफ कराने के आदेश दिए। पार्टी हाईकमान के आदेश पर सपा के चाणक्य हे जाने वाले पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव प्रो0 रामगोपाल यादव के भांजे एमएलसी अरविंद यादव ने पूर्व मंत्री आलोक शाक्य और सदर विधायक राजू यादव के खिलाफ करहल थाने में मुकदमा दर्ज कराया है। पार्टी सूत्रो का दावा है कि दोनो आरोपी नेताओ के खिलाफ पार्टीकमान निष्कासन की कार्रवाई कर सकती है।

विधानसभा चुनावः मतदान करना सिखाएगी एलईडी वैन मतदाताओं की जागरुकता को एलईडी मोबाइल वैन रवाना

अखंड भारत संदेश

भदोही। भारत निर्वाचन आयोग एवं मुख्य निर्वाचन अधिकारी के निर्देश पर आज एलईडी वैन रवाना की गई। यह वैन तीनों विधानसभा क्षेत्रों के सभी मतदान केंद्रोंपर जाएगी और मतदाताओं को ईवीएम और वीवीपैट की जानकारी प्रदान करेगी। इसके लिए कर्मचारियों की तैनाती की गई है। आज जिलाधिकारी आर्यका अखौरी ने जनपद की विधानसभा भदोही-392, ज्ञानपुर-393 और औराई-394 के लिए उक्त प्रचार वाहनों को रवाना किया। प्रचार-प्रसार के निमित्त जनपद और तहसील स्तर पर वैन का संचालन किया जा रहा है। एलईडी वैन पर ईवीएम से संबंधित जानकारी के लिए एक कार्मिक और ईवीएम/वीवीपैट के संचालन के लिए एक कार्मिक की नियुक्ति की गई है जो ईवीएम एवं वीवीपैट के संचालन का कार्य करते

एलईडी वैन को झंडी दिखाती डीएम

हुए नागरिक को प्रशिक्षण प्रदान करेंगे और प्रतिदिन सूचना निर्धारित फार्मेट पर उपलब्ध कराएंगे। प्रत्येक मोबाइल वैन टीम प्रतिदिन प्रातः आठ बजे से शाम पांच बजे तक मतदान केंद्र पर मतदाता जागरूकता कार्यक्रम के लिए जाएगी। मतदान की प्रक्रिया सेंटरों पर उपस्थित होकर ईवीएम/वीवीपैट की भलीभांति जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एलईडी मोबाइल वैन को जिलाधिकारी आर्यका अखौरी के साथ मुख्य विकास अधिकारी/नोडल आफीसर स्वीप भानु प्रताप सिंह ने संयुक्त रूप से रवाना किया। इस मौके पर सहायक निर्वाचन अधिकारी कुमुद, लिपिक जगदीश, लिपिक विकास सिंह सहित अन्य अधिकारीगण एवं कर्मचारी गण उपस्थित रहे।

कम नहीं हो रही कांग्रेस की मुश्किलें

मेघालय में फिर लगा बड़ा झटका, दो बड़े नेताओं ने दिया इस्तीफा

शिलॉन्ग। कांग्रेस को मेघालय में फिर बड़ा झटका लगा है। 17 में से 12 विधायकों के तृणमूल कांग्रेस (ळटउ) में शामिल होने के कुछ दिनों बाद, मेघालय में पार्टी के दो और वरिष्ठ नेताओं ने इस्तीफे की पेशकश की है। मेघालय प्रदेश कांग्रेस कमेटी (एमपीसीसी) के कार्यकारी अध्यक्ष जेम्स लिंगदोह और पूर्व महासचिव डॉ मानस दास गुप्ता ने बुधवार को शिलांग में पार्टी से इस्तीफा दे दिया। जेम्स लिंगदोह ने एआईसीसी महासचिव केसी वेणुगोपाल को अपना त्याग पत्र सौंपने के बाद संवाददाताओं से कहा कि, वह 1988 में कांग्रेस में शामिल हुए और 33 वर्षों तक पार्टी में रहे, कई पदों पर रहे। उन्होंने कहा, 'मैंने अपने 33 साल पार्टी के लिए बिताए हैं और यह सिर्फ मजाक नहीं है। मेघालय कांग्रेस का बेस मेरे पिता ने बनाया था, लेकिन उन्होंने मुझे कांग्रेस पार्टी

से बाहर कर दिया। उन्होंने मुझे कार्यकारी अध्यक्ष से हटाने के लिए पहले ही दिल्ली को एक पत्र भेजा था। पार्टी का पतन राज्य में 2018 के विधानसभा चुनाव से पहले 31 दिसंबर, 2017 को शुरू हुआ था।

अक्ळउ ने बुधवार को मेघालय प्रदेश कांग्रेस कमेटी के कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में डेबोरा सी. मारक और पी.एन. साइम को नियुक्त किया और बिलीकिड संगमा, ग्रिथलसन आरेंघ, रोजर बेनी ए. संगमा, ई. ओसाकर फिरा, मैनुअल बडवार को महासचिव नियुक्त किया है।

वहीं, एमपीसीसी के पूर्व महासचिव डॉ मानस दास गुप्ता ने भी पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से इस्तीफा दे दिया है। डॉ गुप्ता ने एमपीसीसी के अध्यक्ष विन्सेंट पाला को अपना त्याग पत्र भेजा, जिसमें कहा गया था, ₹मैं भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से तत्काल प्रभाव से इस्तीफा देता हूं। 36 वर्षों तक पार्टी की सेवा करने के बाद एमपीसीसी के हालिया फेरबदल तक के महासचिव के रूप में भी कार्य किया। हाल ही में, मेघालय के पूर्व मुख्यमंत्री डॉ मुकुल संगमा सहित कांग्रेस के 17 में से 12 विधायक टीएमसी में शामिल हुए। मेघालय विधानसभा अध्यक्ष मेतबाह लिंगदोह ने बुधवार को डॉ मुकुल संगमा को नोटिस जारी किया, जो टीएमसी विधायक दल के नेता भी हैं, और नौ अन्य विधायकों को कांग्रेस विधायक अम्पारीन लिंगदोह द्वारा दायर एक याचिका के बाद नोटिस जारी किया, जिसमें विधानसभा से उनकी अयोग्यता पर उनका जवाब मांगा गया था।

डेल्टा की तुलना ओमिक्रॉन में पाए जाते हैं दोगुना अधिक खराब स्पाइक म्यूटेशनः स्वास्थ्य मंत्रालय

नई दिल्ली। भारत में कोरोना वायरस के नए वैरिएंट ओमिक्रॉन ने दस्तक दे दी है। बीते 24 घंटे में दो मामलों की पुष्टि हुई है। स्वास्थ्य मंत्रालय का कहना है कि नया ओमिक्रॉन वैरिएंट संभवतः 500 प्रतिशत अधिक संक्रामक है। इसमें डेल्टा संस्करण की तुलना में खराब स्पाइक म्यूटेशन की संख्या 2 गुना से अधिक है। गुरुवार को कोविड -19 पर एक नियमित प्रेस कॉन्फ्रेंस को संबोधित करते हुए, संयुक्त सचिव (टङ्गलत्रह्र) लव अग्रवाल ने कहा कि विश्व स्तर पर मामलों में वृद्धि हुई है, जिसमें यूरोप का योगदान 70 प्रतिशत मामलों में है। उन्होंने कहा, ₹यूरोप में मामलों में भारी वृद्धि देखी जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायों के बारे में बात कर रहा है। सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायों में ढिलाई के कारण यूरोप में अधिक मामले हैं। जर्मनी में 75,000 से अधिक मामले हैं,

ब्रिटेन में 47,000 से अधिक मामले हैं। फ्रांस ने 50,470 से अधिक मामले दर्ज किए हैं। उन्होंने कहा, ₹दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र जिसमें भारत और 11 अन्य देश शामिल हैं, ने पिछले एक सप्ताह में केवल 1.2 लाख मामले दर्ज किए हैं। यह दुनिया के मामलों का केवल 3.1 प्रतिशत है। दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र में मामलों में कमी दर्ज की जा रही है। स्वास्थ्य संयुक्त सचिव ने आगे कहा कि कम टीकाकरण कवरेज उच्च मृत्यु दर और मामलों में वृद्धि का कारण बन रहा है। अग्रवाल ने कहा कि अब तक 29 देशों में ओमिक्रॉन संस्करण के 373 मामलों का पता चला है। कर्नाटक में इसके दो मामले सामने आए हैं। उनके संपर्क में आने वाले लोगों का पता लगाया जा रहा है। उन्होंने कहा, ₹दोनों ओमिक्रॉन संबंधित मामलों में अब तक हल्के लक्षण पाए गए हैं। देश और दुनिया भर में अब तक ऐसे सभी मामलों में कोई गंभीर लक्षण नहीं देखा गया है।

दिसंबर में होगी भारत-चीन के बीच 14वें दौर की कोर कमांडर वार्ता, निकलेगा समाधान

नई दिल्ली। वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर चल रहे गतिरोध को हल करने के लिए भारत और चीन के बीच दिसंबर के मध्य में 14वें दौर की कोर कमांडर वार्ता आयोजित होने की संभावना है। सरकारी सूत्रों ने न्यूज एजेंसी एएनआई को बताया, ₹14वें दौर की वार्ता के लिए चीन की ओर से आमंत्रण आना है। संभावना है कि दिसंबर के दूसरे पखवाड़े में बातचीत हो सकती है। सूत्रों ने कहा कि यह समय भारत के लिए उपयुक्त होगा। इस समय सशस्त्र बल समारोह में व्यस्त रहेगा। बल 1971 के युद्ध में पाकिस्तान की करारी हार और 16 दिसंबर तक भारत की जीत की स्वर्ण जयंती मना रहा है। आपको बता दें कि भारत और चीन के बीच बातचीत चल रही है। गतिरोध को हल करने के लिए पूर्वी लद्दाख क्षेत्र में वास्तविक नियंत्रण रेखा पर अब तक 13 राउंड की बातचीक हो चुकी है। पैंगोंग झील के किनारे और गोगरा की ऊंचाई पर गतिरोध वाले बिंदुओं को हल कर लिया गया है।

लखनऊः फाइटर जेट मिराज का टायर चोरी

लखनऊ। लखनऊ में शहीद पथ पर चलती ट्रेलर से फाइटर जेट मिराज का टायर चोरी हो गया। इसकी जानकारी होते ही एयरफोर्स के अधिकारियों ने ट्रेलर को कब्जे में लेते हुए चालक को भी हिरासत में ले लिया है। उससे पूछताछ की जा रही है। टायर मध्य वायु कमान का स्टेशन बीकेटी से जोधपुर भेजा जा रहा था। चोरों ने रास्ते में ट्रेलर का रस्सा काटकर वारदात को अंजाम दिया है। इस मामले में आशियाना थाने में ट्रेलर चालक की तहरीर पर मुकदमा दर्ज किया गया है। पुलिस भी अपने स्तर से जांच कर रही है। पुलिस के मुताबिक शहीद पथ के आसपास लगे सीसीटीवी कैमरों की फुटेज खंगाली जा रही है।

लखनऊ के बीकेटी में मध्य वायु कमान का स्टेशन है। एयरबेस से मिराज फाइटर जेट के पांच टायर जोधपुर एयरबेस भेजे जा रहे थे। 27 नवंबर की रात करीब दो बजे सेना से संबंद्ध ट्रेलर टायर लोड कर निकला था। ट्रेलर का चालक मायापुर अजमेर निवासी

हेम सिंह रावत था। हेम सिंह रावत के मुताबिक वह शहीद पथ के रास्ते कानपुर की तरफ निकल रहा था। शहीद पथ पर ही एसआर होटल के पास जाम लगा हुआ था। जाम के बीच ट्रेलर के पीछे चल रही काले रंग की स्कार्पियो से उतरे दो लोगों ने रस्सा काटकर एक टायर उतार लिया। जाम के कारण वह गाड़ी किनारे लगाकर चोरों को पकड़ नहीं सका। इसी बीच स्कार्पियो सवार वहां से निकल गये। हेम सिंह ने इसकी सूचना पुलिस कंट्रोल रूम के 112 नंबर पर दी।मौके पर पहुंची पीआरवी ने उसे गाड़ी सहित आशियाना थाने लेकर गई। जहां पूरी जानकारी प्रभारी निरीक्षक धीरज कुमार शुक्ला को दी गई। संवेदनशील मामला होने के कारण पुलिस ने तत्काल चालक हेम सिंह रावत की तहरीर पर मुकदमा दर्ज कर लिया। वहीं पड़ताल शुरू कर दी लेकिन कोई सुराग नहीं लगा। प्रभारी निरीक्षक आशियाना धीरज कुमार शुक्ला के मुताबिक शहीद पथ के आसपास के सभी भवनों पर लगे सीसीटीवी कैमरों की फुटेज खंगाली जा रही है। वहीं, पुलिस बीकेटी के एयरफोर्स स्टेशन से लेकर वारदात होने के बीच के सभी जगह सीसीटीवी कैमरों को खंगालने में जुटी है। इसके अलावा आसपास के रास्ते पर भी पुलिस की निगरानी शुरू हो गई।चालक हेम सिंह रावत की तहरीर पर पुलिस ने मुकदमा दर्ज कर लिया।

ममता बनर्जी को देश से ज्यादा है भतीजे की चिंता, कैसे करेंगी मोदी से मुकाबला : अधीर रंजन चौधरी

नईदिल्ली। लोकसभा में कांग्रेस संसदीय दल के नेता अधीर रंजन चौधरी ने पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री और तृणमूल कांग्रेस (ळटउ) सुप्रीमो ममता बनर्जी पर तंज कसा है। इन्होंने कहा, "ममता

राष्ट्रगान का सम्मान करना नहीं जानती। उन्हें देश के लिए कुछ करने से ज्यादा अपने भतीजे की तारीफ करने में दिलचस्पी है। कांग्रेस एक राष्ट्रीय पार्टी है और इसी तरह वह विभिन्न राज्यों में मुद्दों को देखती है। उन्होंने कहा कि कांग्रेस के पास 20 प्रतिशत लोकप्रिय वोट हैं। जबकि टीएमसी के पास केवल 4 प्रतिशत लोगों का समर्थन प्राप्त है। अधीर रंजन ने पूछा कि क्या आप 20 प्रतिशत वोटों के इस हिस्से के बिना मोदी से लड़ सकते हैं अधीर रंजन चौधरी ने ममता बनर्जी को मोदी का मुखबिर बताया। उन्होंने कहा कि ममता कांग्रेस और विपक्ष को तोड़ना और कमजोर करना चाहती हैं। आपको बता दें कि ममता बनर्जी इन दिनों अपनी पार्टी टीएमसी के विस्तार में जुटी हैं। इसके लिए उन्होंने भाजपा से अधिक कांग्रेस को नुकसान पहुंचाया है। देश की सबसे पुरानी पार्टी के कई नेताओं को अपने पाले में किया है। मेघालय में तो 12 विधायकों को तोड़कर कांग्रेस को विपक्ष से बेदखल कर दिया।

पाकिस्तान को उसके घर में घुसकर मारा... योगी को जिताने के लिए अमित शाह ने खेला सर्जिकल स्ट्राइक वाला कार्ड

नई दिल्ली। केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने कहा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली मौजूदा केंद्र सरकार ने उरी और पुलवामा की घटनाओं के बाद सर्जिकल स्ट्राइक की। उन्होंने कहा, ₹पाकिस्तान को उसके घर में घुसकर मारा।₹ उन्होंने यह भी कहा कि पीएम मोदी ने दुनिया में भारत का

सम्मान बढ़ाया है। आपको बता दें कि उत्तर प्रदेश में अगले साल विधानसभा चुनाव होने वाले हैं। सभी पार्टियों ने अपनी पूरी ताकत चुनाव प्रचार में झोंक दी है। आज केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह सहारनपुर पहुंचे। यहां उन्होंने वहां शाकुंभरी देवी विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया। इस मौके पर लोगों को सम्बोधित करते हुए अमित शाह ने एक बार फिर पाकिस्तान पर हुए सर्जिकल स्ट्राइक का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान को उसके घर में घुसकर मारा।

इस दौरान उन्होंने विपक्ष को आड़े हाथों लिया। अखिलेश यादव पर हमला बोलते हुए अमित शाह ने कहा कि वे यूपी की कानून व्यवस्था पर सवाल उठा रहे हैं। पता नहीं किस चश्मे से देखते हैं। घर जाकर जरा आंकड़े खंगाल लें। उनके राज में प्रदेश में माफिया राज था। आज कानून का राज है। अपराधों में 70 प्रतिशत की कमी आई है। अमित शाह ने कहा कि पिछले चुनाव में हमने पलायन खत्म करने का वादा किया था। योगी आदित्यनाथ की सरकार ने न सिर्फ वो वादा पूरा किया है बल्कि विकास को भी रफ्तार दी है। उन्होंने कहा कि दिल्ली से सड़क की दूरी ही नहीं दिलों की दूरी भी कम हुई है। उन्होंने कहा कि योगी सरकार से पहले यूपी में कानून व्यवस्था लचर थी। आज महिलाएं सुरक्षित महसूस कर रही है। यूपी में एक जमाना था जब माफियाओं की तूती बोलती थी आज वही माफिया पुलिस के सामने आत्मसर्मपण कर रहे हैं।

ट्विटर का बड़ा एक्शन, सरकारों के पक्ष में प्रोपेगेंडा करने वाले 3500 अकाउंट्स किया बंद

कैलिफोर्निया। ट्विटर ने गुरुवार को छह देशों में सरकार प्रोपेगेंडा को लेकर पोस्ट करने वाले लगभग 3500 अकाउंट्स को बंद कर दिया है। इनमें अधिकांश चीन के हैं। ट्विटर ने एक बयान जारी करते हुए कहा कि हमने उन अकाउंट्स के नेटवर्क को हटा दिया है, जो झिंजियांग में उइगर आबादी के इलाज से संबंधित चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नरेटिव को बढ़ाता है। ट्विटर ने आगे कहा कि आज हम 2048 अकाउंट्स का रिप्रेजेंटेटिव सैंपल जारी कर रहे हैं। ट्विटर ने आगे कहा कि हमने झिंजियांग क्षेत्रीय सरकार की ओर से समर्थित एक निजी कंपनी 'चांगयु कल्चर' से जुड़े 112 खातों के एक नेटवर्क को भी हटा दिया।

टीएमसी तय करे कि बीजेपी के विरोध में है या हमारे खिलाफ... ढङ को लेकर कांग्रेस बोली- कंसलटेंट का जवाब नहीं देती पार्टी

नईदिल्ली। कांग्रेस और तृणमूल कांग्रेस में दूरियां बढ़ती जा रही हैं। सार्वजनिक तौर पर एक दूसरे के खिलाफ बयानबाजी से परहेज बरतने वाली दोनों पार्टियां अब कोई मौका नहीं छोड़ रही हैं। मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के मुंबई में दिए बयान और चुनाव रणनीतिकार प्रशांत किशोर की टिप्पणी पर कांग्रेस ने पलटवार किया है। पार्टी महासचिव और प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाला ने बेहद सख्त लहजे में कहा कि कई बार भाजपा से हाथ मिलाने वाली मुख्यमंत्री ममता बनर्जी कांग्रेस को सिद्धांत का पाठ पढ़ा रही हैं। उन्होंने कहा कि तृणमूल और उनके जैसी दूसरी पार्टियों को यह तय करना होगा कि वह भाजपा के खिलाफ है या कांग्रेस के खिलाफ है।

मुख्यमंत्री ममता बनर्जी पर भाजपा की तरह तोड़फोड़ करने का आरोप लगाते हुए सवाल किया कि क्या वह भी फासीवाद विचारधारा के रास्ते पर तो नहीं चल पड़ी है। दरअसल, कांग्रेस ममता बनर्जी के गोवा और मेघालय में पार्टी नेताओं को तोड़ने और मुंबई में राहुल गांधी पर की गई टिप्पणी से नाराज है। एनसीपी प्रमुख शरद पवार से मुलाकात के बाद ममता के यूपीए को लेकर दिए बयान पर टिप्पणी करते हुए सुरजेवाला ने कहा कि तृणमूल कांग्रेस यूपीए में नहीं है। ऐसे में वह इस गठबंधन के बारे में बात क्यों कर रही है। इसके साथ उन्होंने ममता के भाजपा और एनडीए के साथ गठबंधनों का भी उल्लेख किया। मालूम हो कि ममता ने एक दिन पहले यह पूछे जाने पर कि क्या वह चाहती हैं कि शरद पवार कांग्रेस के नेतृत्व वाले यूपीए के अध्यक्ष बनें, इस पर बनर्जी ने कहा था कि अब यूपीए जैसा कुछ नहीं है।सुरजेवाला ने तृणमूल पर तंज कसते हुए कहा कि राजनीतिक अवसरवादिता और सिद्धांतों की लड़ाई में अंतर होता है। तीन-चार बार भाजपा के साथ जाओ और फिर दो-तीन बार कांग्रेस के साथ वापस आओ, इसके बाद सिद्धांतों का पाठ पढ़ाया जाए यह गलत है। उन्होंने कहा कि ममता वही कर रही हैं, जो प्रधानमंत्री मोदी कर रहे हैं। ुनाव रणनीतिकार प्रशांत किशोर की टिप्पणी के बारे में सवाल किए जाने पर रणदीप सुरजेवाला ने कहा कि कांग्रेस एक राजनीतिक दल है। पार्टी कंसलटेंट की टिप्पणियों पर टिप्पणी नहीं करती। खासतौर पर उस वक्त जब कंसलटेंट की कोई विचारधारा नहीं है। वह कंसलटेंट प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के भी कंसलटेंट रहे हों।

जनवरी के अंत तक कोरोना वायरस के नए वैरिएंट ओमिक्रॉन के जद में होगा फ्रांस

पेरिस। कोरोना वायरस के नए वैरिएंट ओमिक्रॉन का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। फ्रांस में भी इसके मामले सामने आ चुके हैं। ऐसे में टॉप वैज्ञानिकों का मानना है कि जनवरी के अंत तक ओमिक्रॉन पूरे जापान को अपने जद में ले सकता है। पहला मामला सामने आने के बाद फ्रांस और अमेरिका की सरकारों ने दुनिया भर के देशों के लिए प्रतिबंध कड़े कर दिए हैं। खासकर विदेशा यात्रियों को लेकर। अमेरिका में ओमिक्रॉन का पहला मामला कैलिफोर्निया में मिला है। जहां, पूरी तरह से वैक्सीनेटेड शख्स 22 नवंबर को दक्षिण अफ्रीका से अमेरिका और सात दिन पर उसकी रिपोर्ट ओमिक्रॉन से पॉजिटिव आई है। वहीं, फ्रांस ने ग्रेटर पेरिस के इले डी फ्रांस क्षेत्र में एक ओमिक्रॉन के एक मामला मिलने की पुष्टि की है।अमेरिका में कड़ाके की ठंडे के बीच राष्ट्रपति जो बाइडेन कोविड-19 से लड़ने की रणनीति पर काम कर रहे हैं। इससे संबंधित एक सूत्र ने रॉयटर को बताया कि इसके लिए सबसे पहला कदम यात्रियों को मार्च

के मध्य तक मास्क पहनने को लेकर उठाया जा सकता है। जिसकी गुरुवार को औपचारिक घोषणा होने की उम्मीद भी की जा रही है। इसके अलावा व्हाइट हाउस अंतरराष्ट्रीय यात्रियों के लिए सख्त टेस्टिंग की घोषणा करने की भी योजना बना रहा है।फ्रांसीसी सरकार के सलाहकार जीन-फ्रेंकोइस डेल्फ्रैसी ने बीएफएम टेलीविजन को बताया कि अभी तक के लिए सच्चा दुश्मन कोरोना का डेल्टा वैरिएंट था जिसकी वजह से देश पांचवी लहर का सामना कर रहा है। उन्होंने कहा कि हमे ओमिक्रॉन वैरिएंट पर नजर रखना चाहिए, जो संभवतः जनवरी के अंत तक डेल्टा से आगे निकल सकता है। जापान ने कोरोना वायरस के नए प्रकार 'ओमिक्रॉन' से बचाव के लिए अंतरराष्ट्रीय उड़ानों की नई बुकिंग पर प्रतिबंध लगाने के एक दिन बाद आज यह फैसला वापस ले लिया। कोरोना वायरस के नए वैरिएंट ओमिक्रॉन के बारे में अभी तक ज्यादा जानकारी दुनिया के सामने नहीं आ पाई है। क्योंकि हाल ही में इस वैरिएंट की पुष्टि हुई है। पहली 8 नवंबर को दक्षिण अफ्रीका में मिलने के बाद यह कम से कम दो दर्जन देशों फैल चुका है।

यूएन हेडक्वार्टर के बाहर दिखा हथियारबंद शख्स

नई दिल्ली। न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्र (वल्लशीं ठंश्लङ्गल्ल) के मुख्यालय के बाहर हथियारबंद शख्स के दिखने के बाद पूरे परिसर की घेराबंदी कर दी गई है। उस शख्स की तलाश के लिए सघन जांच की जा रही है। फिलहाल किसी अनहोनी घटना की जानकारी नहीं है। संयुक्त राष्ट्र का मुख्यालय अमेरिका के न्यूयॉर्क नगर में है। इस परिसर को खरीदने में 85 लाख डॉलर खर्च किए गए थे। इस इमारत की स्थापना का प्रबंध एक अन्तरराष्ट्रीय शिल्पकारों के समूह द्वारा हुआ। इस मुख्यालय के अलावा और इसकी अहम संस्थाए जिनेवा, कोपनहेगन आदि में भी है। संयुक्त राष्ट्र एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन है। इसका गठन अन्तरराष्ट्रीय कानून को सुविधाजनक बनाने में सहयोग करने, अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, मानव अधिकार और विश्व शान्ति के लिए किया गया था। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्टूबर 1945 को 50 देशों के हस्ताक्षर होने के साथ हुई थी। वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र में 193 देश शामिल हैं।

अब टीवी और म्यूजिक पर भी रोक लगा रहा तालिबान, काबुल के कई थिएटर बंद

नई दिल्ली। अगस्त में काबुल पर कब्जा करने के बाद से तालिबान लगातार मानवाधिकारों की धज्जियां उड़ा रहा है। अब तालिबान अफगान लोगों के मनोरंजन के साधनों पर भी ताला लगाने की तैयारी कर रहा है। तालिबान ने मनोरंजन के साधनों को खत्म करने के लिए सख्त कानून लागू किए हैं। न्यूज एजेंसी एएनआई की रिपोर्ट मुताबिक पिछले 15 सालों में अफगानिस्तान में जो भी मनोरंजन के साधन पनपे थे, वह खत्म होते जा रहे हैं। तालिबान शासन के कड़े कानूनों ने लाइव म्यूजिक, म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स और तेजतर्रार पार्टियों पर प्रतिबंध लगा दिए हैं। तालिबान जल्द ही इसे लेकर सख्त शरिया कानून लागू कर सकता है। काबुल सहित कई शहरों में एयरवेब, टीवी स्क्रीन, म्यूजिक स्कूल और थिएटर बंद हो चुके हैं।

अपने पिछले शासन के दौरान तालिबान ने हिंसक तरीके से म्यूजिकल इंस्ट्रूमेंट्स को नष्ट कर दिया था। नियमों को पालन नहीं करने वाले लोगों को कोड़े मारने के सजा दिए। इसके बाद अफगानिस्तान में लोग कैसेट और सीडी को छिपाकर रखने लगे। कैसेट्स को छिपाकर रखे पकड़े जाने पर तालिबान ने अफगान लोगों को कठोर सजा दी थी। इसके साथ ही अफीम पर प्रतिबंध के बावजूद तालिबान पिछले बीस सालों में पाकिस्तान और ईरान की सीमाओं पर आपूर्ति बढ़ाने के लिए अफीम के व्यापार पर बहुत अधिक निर्भर था। अफगानिस्तान पर नजर रखने वाले एक्सपर्ट्स बताते हैं कि तालिबान में कोई तबदीली नहीं हुई है। तालिबान एक बार फिर अपने पुराने शासनकाल के तरीकों को अपना रहा है।

अंखड भारत संदेश के लिए स्वामी श्री योगी सत्यम क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान संस्थान झूंसी, प्रयागराज 211019 से प्रकाशित एवं रामा प्रिंटिग प्रेस 53/25/1ए बेली रोड नया कटरा प्रयागराज से मुद्रित।

मुद्रक/प्रकाशक

स्वामी श्री योगी सत्यम पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत समाचारों के चयन के लिए उत्तरदायी। इस समाचार पत्र में प्रकाशित समस्त समाचारों से संबंधित विवादों का न्याय क्षेत्र प्रयागराज होगा। आरएनआई नं. UPHIN 2001/29506